उत्तराखण्ड के प्रमुख स्वतन्त्रता सेनानी

डा० धर्मपाल सिंह मनराल
डा० अरुण मित्तल

उत्तराखण्ड के प्रमुख स्वतन्त्रता-सेनानी

डॉ० धर्मपालसिंह मनराल

प्रवक्ता, इतिहास विभाग
राजकीय महाविद्यालय,
रामनगर (नैनीताल)

एवं

डॉ० अरुण मित्तल

प्रवक्ता, इतिहास विभाग
देवसिंह बिष्ट महाविद्यालय, नैनीताल

श्री अल्मोड़ा बुक डिपो

गांधी मार्ग, अल्मोड़ा-२६३ ६०१ (उ० प्र०)

प्रकाशक

श्री अल्मोड़ा बुक डिपो
गांधी मार्ग, अल्मोड़ा—२६३ ६०१

संस्करण

प्रथम, १९७७

मूल्य

अजिल्द : रु० २०/-
सजिल्द : रु० २५/-

मुद्रक

दी एजुकेशनल प्रेस
बांके विलास, सिटी स्टेशन मार्ग, आगरा-२८२ ००३
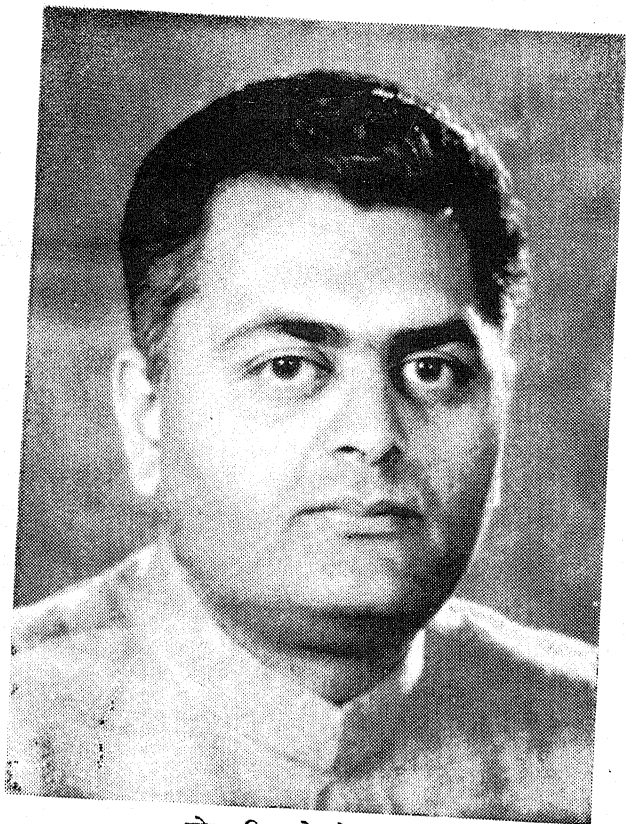
योग्य पिता के योग्य पुत्र

श्री कृष्णचन्द्र पन्त

No. ME-4 (1) / 77

ऊर्जा मंत्री, भारत
MINISTER FOR ENERGY
INDIA
(OORJA MANTRI, BHARAT)

नई दिल्ली, दिनांक 15 मार्च, 1977
New Delhi,

संदेश

राष्ट्र के स्वतंत्रता-संग्राम में जिन विभूतियों ने योगदान दिया है वे सभी हमारे लिए वन्दनीय हैं। स्वतंत्रता-संग्राम में उत्तराखण्ड की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है और अपने सेनानियों के कुशल नेतृत्व में उत्तराखण्ड की जनता ने अमिट बलिदान किए और अपूर्व साहस दिखाया। आज हमें जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई है उसके लिए हम इन सेनानियों के बहुत ऋणी हैं।

प्रसन्नता की बात है कि उत्तराखण्ड के स्वतंत्रता-सेनानियों के बारे में पुस्तक लेखन का प्रयास किया जा रहा है। आशा है, पुस्तक के माध्यम से इन सेनानियों के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय आम जनता को मिलेगा और महान् बलिदानों और विकट संघर्षों के फलस्वरूप प्राप्त हुई स्वतंत्रता की रक्षा करने और राष्ट्र को प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ाने की प्रेरणा जनता में इस पुस्तक के माध्यम से बलवती होगी।

मैं इस प्रयास की सफलता की कामना करता हूँ।

कृष्ण चन्द्र पन्त

भूमिका

उत्तराखण्ड हिमालय की गोद में बसा हुआ भारतवर्ष का एक महत्वपूर्ण भाग है। जहाँ एक ओर यहाँ के सांस्कृतिक महत्व से प्रभावित होकर देश के जगद्गुरु शंकराचार्य, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ जैसे महान् धर्मानुयाइयों ने उत्तराखण्ड की धार्मिक यात्रा कर सम्पूर्ण देश-विदेशों में यहाँ की धार्मिक मान्यताओं को प्रतिष्ठित किया, वहीं दूसरी ओर इस क्षेत्र की सीमाएँ विदेशों से मिली होने, सेना में सक्रिय भाग लेने तथा स्वतन्त्रता-संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान देने के कारण इसका सामरिक एवं राजनैतिक महत्व भी कम नहीं है।

सन् १८१५ में गोरखों को पराजित कर अंग्रेजों ने उत्तराखण्ड पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। कुमाऊँ को अंग्रेजों ने अपने अधिकार-क्षेत्र में रख कर सम्पूर्ण गढ़वाल को दो भागों में विभक्त कर दिया। आधे गढ़वाल (वर्तमान पौड़ी और चमोली जिला) को ब्रिटिश गढ़वाल के नाम से कुमाऊँ कमिश्नरी के अन्तर्गत तथा आधे गढ़वाल (वर्तमान टिहरी और उत्तरकाशी जिला) को टिहरी रियासत के नाम से प्रद्युम्नशाह के पुत्र सुदर्शनशाह को दे दिया। सुदर्शन-शाह ने भगीरथी और भिलंगना के संगम पर स्थित टिहरी को अपनी राजधानी बनाया। कुमाऊँ का कमिश्नर टिहरी राज्य का राजनैतिक प्रतिनिधि (Political Agent) भी होता था।

भारतवर्ष के स्वतन्त्रता-संग्राम में उत्तराखण्ड-निवासियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरणों में यहाँ एक साथ कई ऐसे स्वतन्त्रता-सेनानियों का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने जनसाधारण में देश-प्रेम की भावना का संचार कर उन्हें ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उक-साया। यद्यपि उत्तराखण्ड में अनेक महान् स्वतन्त्रता-सेनानियों ने जन्म लिया, तथापि उनको अभी तक प्रकाश में नहीं लाया गया है, जिससे समस्त देशवासी ही नहीं बल्कि उत्तराखण्डवासी भी अपने अतीत के गौरवपूर्ण क्रिया-कलापों से अनभिज्ञ हैं।

भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के लिए अहिंसात्मक तथा हिंसात्मक आन्दोलनों में उत्तराखण्ड-निवासियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान सरकार ने

इन सभी देशभक्तों को स्वतन्त्रता-सेनानी की उपाधि से विभूषित किया है, अतः इस पुस्तक को 'उत्तराखण्ड के प्रमुख स्वतन्त्रता-सेनानी' का नाम दिया गया है। जनसाधारण की जानकारी के लिए प्रथम अध्याय में 'उत्तराखण्ड : स्वाधीनता-संग्राम की एक झाँकी' प्रस्तुत की गई है, क्योंकि स्वतन्त्रता-सेनानियों के विषय में जानकारी प्राप्त करने से पूर्व यहाँ के स्वतन्त्रता-संग्राम का संक्षिप्त इतिहास जानना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रस्तुत पुस्तक को लिखने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। दो वर्ष तक निरन्तर उत्तराखण्ड की दुर्गम एवं जोखिमभरी यात्राएँ कर सामग्री-संकलन किया है; जिसके साथ यह प्रेरणा रही कि हम उन स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानियों के जीवन पर प्रकाश डाल सकें, जिनमें से कुछ स्वतन्त्रता की नींव के पत्थर बनकर भी अज्ञात हैं। यदि पाठकों को इस पुस्तक से परितोष तथा उत्तराखण्ड-निवासियों में उत्साह का संचार होगा, तो हम अपना प्रयास सार्थक समझेंगे।

हम अपने गुरुओं डॉ० देवीदत्त पन्त (कुलपति, कुमाऊँ विश्वविद्यालय), डॉ० गौतम एन० द्विवेदी (यू० जी० सी० प्रोफेसर, देबसिंह महाविद्यालय, नैनीताल), डॉ० (श्रीमती) शाकम्बरी द्विवेदी (विभागाध्यक्षा, इतिहास विभाग, ठाकुर देबसिंह महाविद्यालय) के विशेष रूप से आभारी हैं, जिन्होंने इस पुस्तक को लिखने के लिए प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्रदान किया।

अन्त में हम कैप्टन शूरवीरसिंह पँवार (पुराना दरबार, टिहरी), श्री धर्मानन्द पाण्डे (भूतपूर्व सम्पादक, शक्ति साप्ताहिक, अल्मोड़ा), श्री पूरनचन्द्र तिवारी अग्निहोत्री (सम्पादक, स्वाधीनता साप्ताहिक, अल्मोड़ा), श्री भैरवदत्त धूलिया (भूतपूर्व सम्पादक, कर्मभूमि साप्ताहिक, कोटद्वार), श्री ललितप्रसाद नैथानी (सम्पादक, सत्यपथ साप्ताहिक, कोटद्वार), श्री पदमकुमार जैन (ज्ञान-लोक पुस्तकालय, देहरादून) और शेरसिंह धौनी (अल्मोड़ा) के भी आभारी हैं, जिन्होंने पुस्तक को पूर्ण करने में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान की।

—लेखक

पूज्य

डॉ० देवोदत्त पन्त

एवं

श्रीमती पुष्पा पन्त

के

कर-कमलों

में

सादर समर्पित

'उत्तराखण्ड के प्रमुख स्वतन्त्रता-सेनानी' नामक पुस्तक प्रकाशित करने का आपका प्रयोजन स्तुत्य है। मुख्यमन्त्री जी इसके लिए आपको बधाई देते हैं।

ठाकुर प्रसाद सिंह
उप सचिव, मुख्य मन्त्री, उत्तर प्रदेश

●

यह जान करके हर्ष हुआ कि आपने 'उत्तराखण्ड के प्रमुख स्वतन्त्रता-सेनानी' पुस्तक तैयार की है। बधाइयाँ तथा शुभकामनायें स्वीकार कीजिए। आशा है कि उसे पढ़कर सब पाठकों को प्रेरणा मिलेगी।

भक्त दर्शन
कुलपति, कानपुर विश्वविद्यालय

●

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि आप ने 'उत्तराखण्ड के प्रमुख स्वतन्त्रता-सेनानी' नामक पुस्तक द्वारा एक ऐसी कमी की पूर्ति की है जो पिछले तीस वर्षों से सभी को अखर रही थी। मुझे पूरी आशा है कि आपकी रचना को ख्याति प्राप्त होगी एवं जन-समुदाय इससे लाभान्वित होंगे।

बिशम्भर दत्त भट्ट
कुलपति, गढ़वाल विश्वविद्यालय
श्रीनगर, गढ़वाल

●

'उत्तराखण्ड के प्रमुख स्वतन्त्रता-सेनानी' पुस्तक राजनीतिक गतिविधियों के अध्ययन का नवनीत है। इतिहास के परिचय के साथ सेनानियों के व्यक्तित्व का रोचक, विचारोत्तेजक और तथ्यों का सुन्दर वर्णन है।

मनोरंजन क्रान्छल

विषय-सूची

उत्तराखण्ड : स्वाधीनता-संग्राम की एक झाँकी

प्रत्येक जाति या देश के स्वतन्त्रता-संग्राम का इतिहास उसकी सर्वोच्च निधि होती है। उसमें संचित देशभक्तों की सेवा, त्याग और बलिदान की रोमांचकारी कहानियाँ उस जाति या देश के बुरे और भले दिनों में उसके उद्धार और उत्थान के लिए प्रेरणा का उत्कृष्ट स्रोत बनी रहती हैं।

सन् १८५७ में भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रथम विद्रोह हुआ जिसका प्रभाव देश के कोने-कोने पर पड़ा। यद्यपि उत्तराखण्ड देश का एक पिछड़ा हुआ क्षेत्र होने के कारण यहाँ सन् १८५७ के विद्रोह का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, तथापि काली कुमाऊँ में अंग्रेजों के अनेक प्रयासों के बावजूद भी वहाँ की जनता ने अपने वीर नेता कालूमहरा के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध सैन्य संगठन स्थापित कर अपनी धधकती हुई विद्रोह की भावना को प्रकट कर ही दिया; परिणामस्वरूप कुमाऊँ के कमिश्नर सर हेनरी रामजे (सन् १८५६–८४ ई०) को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

सन् १८५७ के गदर की अवधि में बरेली के नवाब खानबहादुर खाँ की सेना ने नैनीताल में अंग्रेजों का सफाया करने के लिए कई बार हल्द्वानी पर आक्रमण किए, लेकिन अंग्रेजों की शक्तिशाली सेना तथा खानबहादुर खाँ के सैनिकों में देशप्रेम की भावना की कमी होने के कारण, उसे इन आक्रमणों में सफलता नहीं मिल पाई।

१६ जून, १८५७ ई० को जलन्धर से विद्रोहियों का एक समूह राजघाट से यमुना को पार कर सहारनपुर में प्रविष्ट हुआ। इन विद्रोहियों की संख्या तीन सौ से छः सौ तक थी। विद्रोहियों को रोकने के लिए लेफ्टिनेण्ट बोइसरौंग और एडवर्ड को गोरखा सैनिकों के साथ भेजा गया। विद्रोही सहारनपुर से देहरादून जिले में चले गये। स्थानीय जनता से किसी प्रकार का सहयोग न मिलने के कारण वे छुटपुट लूटमार करने के पश्चात् लौट गये और अंग्रेजों को मारने में सफल न हो सके।

उत्तराखण्ड में गोरखों के अत्याचारों की जनमानस पर स्मृति, अंग्रेजों की सुधार नीति, टिहरी-नरेश द्वारा अंग्रेजों की मदद, रामजे के कुशल प्रशासन एवं लोकप्रियता, तत्कालीन उत्तराखण्ड के राजनैतिक तथा सामाजिक पिछड़ेपन के

कारण यहाँ स्वतन्त्रता का प्रथम सग्राम असफल रहा। सन् १८५७ के विद्रोह का उत्तराखण्ड पर एक प्रभाव पड़ा कि जो अंग्रेज स्विट्जरलैण्ड की भाँति स्वतन्त्र व्यवसाय के आधार पर यहाँ बस गये थे, उन्हें अपनी सुरक्षा का भय उत्पन्न हो गया था।

सन् १८५७ के बिद्रोह के पश्चात् काफी लम्बी अवधि तक उत्तराखण्ड मे कोई राजनैतिक घटना नहीं घटी। इस अवधि में अल्मोड़ा, नैनीताल और रानीखेत अंग्रेजों के ग्रीष्म-निवास के रूप में विकसित होने लगे। सन् १८७० में अल्मोड़ा में 'डिबेटिंग क्लब' की स्थापना की गई। संयुक्त प्रान्त के लाट साहब ने 'डिबेटिंग क्लब' के उद्देश्यों से प्रसन्न होकर उसके कार्यकर्ताओं से क्लब के कार्यों का विवरण प्रकाशित करवाने के लिए एक प्रेस खोलने की सलाह दी। अतः सन् १८७१ में प्रेस की स्थापना कर 'अल्मोड़ा अखबार' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह संयुक्त प्रान्त का सर्वप्रथम हिन्दी साप्ताहिक है। प्रारम्भ में यह पत्र बुद्धिबल्लभ पन्त के सम्पादकत्व में निकला और फिर मुंशी सदानन्द सनवाल सन् १९१३ तक इसके सम्पादक रहे। 'अल्मोड़ा अखबार' सन् १९१३ तक स्थानीय सामाजिक समाचारों का पत्र रहा। सर्वप्रथम सन् १८८३ में अल्मोड़ा में बुद्धि बल्लभ पन्त की अध्यक्षता में इलवर्ट बिल के समर्थन में एक सभा हुई।

देहरादून में राजनैतिक चेतना जागृत करने का प्रमुख श्रेय आर्यसमाज को है। सन् १८९७ में दयानन्द सरस्वती ने हरिद्वार में कुम्भ के मेले के अवसर पर पाखण्ड-खण्डनी पताका फहराई। देहरादून के तत्कालीन प्रमुख व्यक्ति महन्त नारायणदास, दरोगालालसिंह आदि हरिद्वार गये और वहाँ स्वामी जी के सारगर्भित भाषणों को सुनकर प्रभावित हुए। उस समय देहरादून में कुछ हिन्दू भद्र पुरुष अपना धर्म-परिवर्तन कर रहे थे। उन्हें धर्म-परिवर्तन से बचाने के लिए स्वामी जी को बैलगाड़ी में बैठाकर देहरादून लाया गया। स्वामी जी के प्रभाव से वे लोग धर्म-परिवर्तन से बच गये।

सन् १९०३ में अल्मोड़ा में गोविन्दबल्लभ पन्त तथा हरगोविन्द पन्त के प्रयत्नों से 'हैप्पी क्लब' की स्थापना हुई। इस क्लब का मुख्य उद्देश्य नवयुवकों में राष्ट्रीय चेतना का संचार करना था। इसकी सदस्य संख्या सीमित रखी गई और इसकी अधिकांश बैठकें शहर से बाहर किसी एकान्त स्थान पर होती थीं।

सन् १९०५ में बंगाल के विभाजन के विरोध में अल्मोड़ा के नवयुवकों ने जनता को संगठित कर सभाएँ आयोजित कीं और जनसाधारण को ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों से अवगत कराया। धीरे-धीरे उत्तराखण्ड का राजनैतिक वातावरण गर्म होने लगा।

'गढ़वाल-यूनियन' की ओर से सन् १९०५ में देहरादून से 'गढ़वाली' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह पत्र प्रारम्भ में पाक्षिक, लेकिन सन् १९१३ से साप्ताहिक बना दिया गया। इस पत्र के माध्यम से गढ़वाल में सामाजिक तथा राजनैतिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ।

सन् १९०५ से १९११ ई० तक उत्तराखण्ड में कोई राजनैतिक घटना नहीं घटी। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस ने फारेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट में एक कर्मचारी के रूप में नौकरी कर देहरादून में गुप्त रूप से क्रान्तिकारी संगठनों की स्थापना की। यहाँ टैगोरभिला के अन्दर क्रान्तिकारियों की गुप्त बैठकें होती थीं। यहीं लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने की योजना बनी थी और सन् १९१२ में निश्चित कार्यक्रम के अनुसार क्रान्तिकारी देहरादून से दिल्ली पहुँचे। उन्होंने चाँदनी चौक दिल्ली में स्थित एक मकान की छत से लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका, किन्तु हार्डिंग बच निकले। बम फेंकने के पश्चात् रासबिहारी बोस अपने क्रान्तिकारियों सहित पुनः देहरादून पहुँचे और वहाँ गुप्त रूप से एक सभा आयोजित की गई, जिसमें लार्ड हार्डिंग के बम से बच निकलने पर शोक प्रकट किया गया। इसके बाद रासबिहारी बोस को प्रतीत हुआ कि उनको सरकार के कर्मचारियों द्वारा सन्देह की दृष्टि से देखा जा रहा है तो वे वहाँ से फरार हो गये।

सन् १९१२ में कुमाऊँ में काँग्रेस की स्थापना हुई। सन् १९१३ में 'अल्मोड़ा अखबार' बद्रीदत्त पाण्डे के सम्पादकत्व में आ जाने के कारण एक विशुद्ध राष्ट्रीय पत्र के रूप में परिवर्तित हो गया और उसकी माँग तीस गुनी बढ़ गई। सन् १९१३ में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक अमेरिका भ्रमण करने के पश्चात् अल्मोड़ा पहुँचे। वहाँ उन्होंने 'शुद्ध-साहित्य-समिति' की स्थापना कर जनसाधारण में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न की। सन् १९१४ में मोहन जोशी, चिरंजीलाल, हेमचन्द्र, बद्रीदत्त पाण्डे आदि नेताओं ने अल्मोड़ा में होमरूल लीग की एक शाखा स्थापित की। इसी समय स्वामी विचारानन्द सरस्वती ने इलाहाबाद से आकर देहरादून को अपना कार्यक्षेत्र निर्धारित किया और वहाँ उन्होंने होमरूल लीग की एक शाखा की स्थापना की। सन् १९१६ में कुमाऊँ कमिश्नरी के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार-विमर्श हेतु नैनीताल में 'कुमाऊँ-परिषद्' की स्थापना की गई और सम्पूर्ण कुमाऊँ कमिश्नरी में इसकी शाखाएँ स्थापित की गई। सन् १९२६ में 'कुमाऊँ-परिषद्' को काँग्रेस में मिला दिया गया। कहा जाता है कि सन् १९१६ से १९२६ ई० के मध्य 'कुमाऊँ-परिषद्' का इतिहास ही कुमाऊँ कमिश्नरी में राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास है। 'कुमाऊँ-परिषद्' ने कुली उतार, कुली बेगार, कुली बर्दायश,

जंगलात सम्बन्धी समस्याओं, लाइसेंस, नयावाद, बन्दोवस्त आदि विषयों के विरुद्ध आवाज उठाई और आन्दोलन किए। सन् १९१६ में महात्मा गान्धी दक्षिणी अफ्रीका से देहरादून आये। वहाँ उन्होंने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत व्याख्यान दिए, जिससे वहाँ की जनता काफी प्रभावित हुई। सन् १९१७ में अल्मोड़ा और नैनीताल नगर में स्वराज्य सभाएँ आयोजित की गई जिनमें उत्तराखण्ड के नेताओं ने जनसाधारण को स्वतन्त्रता के महत्व से अवगत कराया। नैनीतालवासियों ने नन्दादेवी के मन्दिर में तिरंगा झण्डा फहराया और तत्पश्चात् इलाहाबाद बैंक के समीप गोविन्दबल्लभ पन्त की अध्यक्षता में एक सभा सम्पन्न हुई।

किसी भी आन्दोलन की सफलता उसके नेतृत्व पर निर्भर करती है। बीसवीं शताब्दी के राष्ट्रीय आन्दोलन के समय उत्तराखण्ड के राजनैतिक वातावरण में एक साथ कुछ ऐसे नेताओं का आविर्भाव हुआ जिन्होंने निजी स्वार्थों को तिलाञ्जलि देकर त्याग और बलिदान की भावना से भारतवर्ष के स्वतंत्रता-संग्राम के क्रमिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनमें से कुछ महान् नेताओं को दिन-रात राष्ट्रीय कार्यों में व्यस्त रह कर अल्पायु में ही मौत का ग्रास होना पड़ा। इन सभी नेताओं के प्रेरणादायक व्यक्तित्व ने जनसाधारण के हृदय में देश-सेवा की ज्वाला प्रज्ज्वलित कर भारतवर्ष की स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इन नेताओं में देशभक्त मोहन जोशी, भारतमाता का सच्चा सपूत रामसिंह धौनी, भारतरत्न गोविन्दबल्लभ पन्त, कूर्मांचल-केसरी बद्रीदत्त पाण्डे, लोकनायक हरगोविन्द पन्त, अमर शहीद श्रीदेव सुमन, निस्स्वार्थ देशभक्त इन्द्रसिंह नयाल, विद्रोही सैनिक नेता चन्द्रसिंह गढ़वाली, बैरिस्टर मुकन्दीलाल, गढ़-केसरी अनुसुयाप्रसाद बहुगुणा, नरदेव शास्त्री, गोरखावीर खड़क बहादुर, महावीर त्यागी, विचारानन्द सरस्वती, देशभक्ति की ज्वलंत ज्योति मास्टर रामस्वरूप, देह विदेशी हृदय भारतीय सुश्री सरला बहिन, देशभक्त भगीरथ पाण्डे, सत्याग्रही सैनिक ज्योतिराम काण्डपाल, काली कुमाऊँ के शेर हर्षदेव ओली, मोहनलाल शाह, गान्धी जी के प्रिय शिष्य शान्तिलाल त्रिवेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सन् १९१८ में 'अल्मोड़ा अखबार' के होली के अंक में बद्रीदत्त पाण्डे ने एक गजल लिखकर तत्कालीन अल्मोड़ा जिले के डिप्टी कमिश्नर लोमस के काले कारनामों पर कुठाराघात किया; फलतः 'अल्मोड़ा अखबार' पर एक हजार की जमानत लगा दी गई। जमानत न देने पर इस पत्र का प्रकाशन बन्द हो गया। सन् १९१८ में अल्मोड़ा ही से 'शक्ति साप्ताहिक' पत्र का प्रकाशन

प्रारम्भ हो गया। यह भी एक विशुद्ध राष्ट्रीय पत्र था। सन् १९१९ में रौलट एक्ट के पास हो जाने पर कुमाऊँ कमिश्नरी में 'कुमाऊँ-परिषद्' के नेतृत्व में रौलट एक्ट का विरोध किया गया। हल्द्वानी में चोरगलिया नामक स्थान पर इस एक्ट के विरोध में उत्तेजक तथा सारगर्भित भाषण दिए गए। ६ अप्रैल, सन् १९१९ को काशीपुर में रौलट एक्ट के विरोध में एक सभा आयोजित की गई और गोविन्दबल्लभ पन्त ने रौलट एक्ट के दोषों पर प्रकाश डालते हुए उसे रद्द करने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास करवाया। अल्मोड़ा नगर में भी इस एक्ट के विरोध में हड़ताल हुई और एक जुलूस निकाला गया। देहरादून में ज्योति स्वरूप के मकान ज्योति सदन में रौलट एक्ट के विरोध में सभा आयोजित कर सारगर्भित तथा उत्तेजक भाषण दिए गए।

यद्यपि कुमाऊँ कमिश्नरी के अल्मोड़ा और नैनीताल जिलों में सन् १९१९ तक काफी राजनैतिक चेतना आ चुकी थी, लेकिन 'ब्रिटिश गढ़वाल' (वर्तमान चमोली और पौड़ी जिले) जिले में बीसवीं शताब्दी की प्रारम्भिक दो दशाब्दियों तक सामाजिक सुधारों एवं सांस्कृतिक विकास का समय रहा। उस काल में वहाँ रायबहादुर तारादत्त गैरोला, चन्द्रमोहन रतूड़ी, धनीराम शर्मा, गिरजा दत्त, जोधसिंह नेगी, डॉ० पातीराम, कुलानन्द बड़थ्वाल, विश्वम्भर दत्त चन्दोला जैसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। ये सभी लोग गोखले मनोवृत्ति के थे। इन्होंने समाचार-पत्रों तथा सभाओं के माध्यम से ब्रिटिश गढ़वाल में सामाजिक चेतना उत्पन्न कर दी। सन् १९१९ में बैरिस्टर मुकन्दीलाल के इंग्लैण्ड से गढ़वाल में वापस आ जाने से ब्रिटिश गढ़वाल का राजनैतिक वातावरण गर्म होने लगा। ब्रिटिश गढ़वाल के दो प्रमुख नेताओं—मुकन्दीलाल तथा अनुसुयाप्रसाद ने सन् १९१९ में अमृतसर में रौलट एक्ट के विरोध में हुए काँग्रेस अधिवेशन में भाग लेकर ब्रिटिश गढ़वाल में राजनैतिक जागृति उत्पन्न कर दी। उन्होंने कुली उतार, कुली बेगार और कुली बर्दायश जिससे जनता में भारी क्षोभ व्याप्त था, को असहयोग आन्दोलन का शस्त्र बनाकर ब्रिटिश गढ़वाल में भी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आन्दोलन को जन्म दे दिया।

'कुमाऊँ-परिषद्' का वार्षिक अधिवेशन प्रत्येक वर्ष कुमाऊँ कमिश्नरी के किसी महत्वपूर्ण स्थान पर होता था। सन् १९१८ में तारादत्त गैरोला की अध्यक्षता में हल्द्वानी और सन् १९२० में काशीपुर में हरगोविन्द पन्त की अध्यक्षता में 'कुमाऊँ-परिषद्' के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अधिवेशन हुए। इन दोनों अधिवेशनों में कुली उतार, कुली बेगार और कुली बर्दायश नामक कुप्रथाओं के विरुद्ध आन्दोलन करने के प्रस्ताव पारित हुए; फलतः जनवरी, १९२१ ई० में कुमाऊँ कमिश्नरी के चालीस हजार बहादुर लोगों ने 'मकर-संक्रान्ति' के

सुअवसर पर बागेश्वर में एकत्रित होकर कुलियों के नामों से अंकित रजिस्टर सरयू की पवित्र धारा में बहा दिये और उपर्युक्त कुप्रथाओं का हमेशा के लिए अन्त कर देने के लिए बागनाथ देवता और सरयू की शपथ ली।

बागेश्वर में इस आन्दोलन का नेतृत्व बद्रीदत्त पाण्डे, हरगोविन्द पन्त और चिरंजीलाल ने किया था। यह आन्दोलन सफल रहा। इसे 'असहयोग की पहली ईंट' तथा 'रक्तपातहीन क्रान्ति' के नाम से भी सम्बोधित किया गया है।

देश में घटित घटनाओं से देहरादून काफी प्रभावित रहा। असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव पास होते ही वहाँ के एक दर्जन वकीलों ने वकालत छोड़ दी, विद्यार्थियों ने स्कूल तथा कॉलेजों का बहिष्कार कर दिया। ठाकुर चन्दनसिंह ने विद्यार्थियों के लिए वहाँ एक राष्ट्रीय स्कूल की स्थापना की, जो कई वर्षों तक सफलतापूर्वक चलता रहा। इसी समय जवाहरलाल नेहरू मसूरी के सेवोय होटल में ठहरे हुए थे। उसी होटल में अफगानिस्तान का एक शिष्टमण्डल भी ठहरा हुआ था। ब्रिटिश सरकार ने इन दोनों के एक साथ ठहरने पर आपत्ति प्रकट की और नेहरू जी को चौबीस घण्टे के अन्दर वहाँ से बाहर चले जाने का नोटिस दिया। सरकार द्वारा नेहरू जी पर लगाये गये इस प्रकार के प्रतिबन्ध से देहरादून जिले की जनता चिढ़ गई, अतः वहाँ के नेताओं ने सन् १९२० में देहरादून में एक राजनैतिक अधिवेशन सम्पन्न करवाया और जवाहरलाल नेहरू को उसका अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। इस प्रकार देहरादून में असहयोग आन्दोलन तीव्र गति से चलने लगा। उस समय चकरौता में चार गोरा पल्टन रहती थीं, जिनके लिए देहरादून से बैलगाड़ियों द्वारा सामान पहुँचाया जाता था, अतः सन् १९२१ में पण्डित मुकन्दराम के नेतृत्व में बैलगाड़ियों के द्वारा गोरों का सामान न ढोने का आन्दोलन चला; फलतः गोरा सैनिकों की चकरौता छावनी में सामान पहुँचना कठिन हो गया। सन् १९२२ में स्वामी विचारानन्द सरस्वती ने देहरादून से 'अभय' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया। यह एक विशुद्ध राष्ट्रीय पत्र था।

सन् १९२२ से १९३० ई० की अवधि में कुमाऊँ कमिश्नरी में सरकार द्वारा वनों में प्रजा के अधिकारों पर लगाये गये प्रतिबन्धों के विरुद्ध जन-आन्दोलन हुए। जनता ने जंगलों में आग लगाकर और तार-बाड़ तोड़कर अपना असन्तोष प्रकट किया। सन् १९२९ में महात्मा गान्धी ने हल्द्वानी, ताकुला (नैनीताल), नैनीताल, भवाली, ताड़ीखेत, अल्मोड़ा, बागेश्वर तथा कौसानी की यात्रा कर जनता में खादी-प्रचार, स्वावलम्बन और राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार किया; फलस्वरूप जनता में जागृति आई।
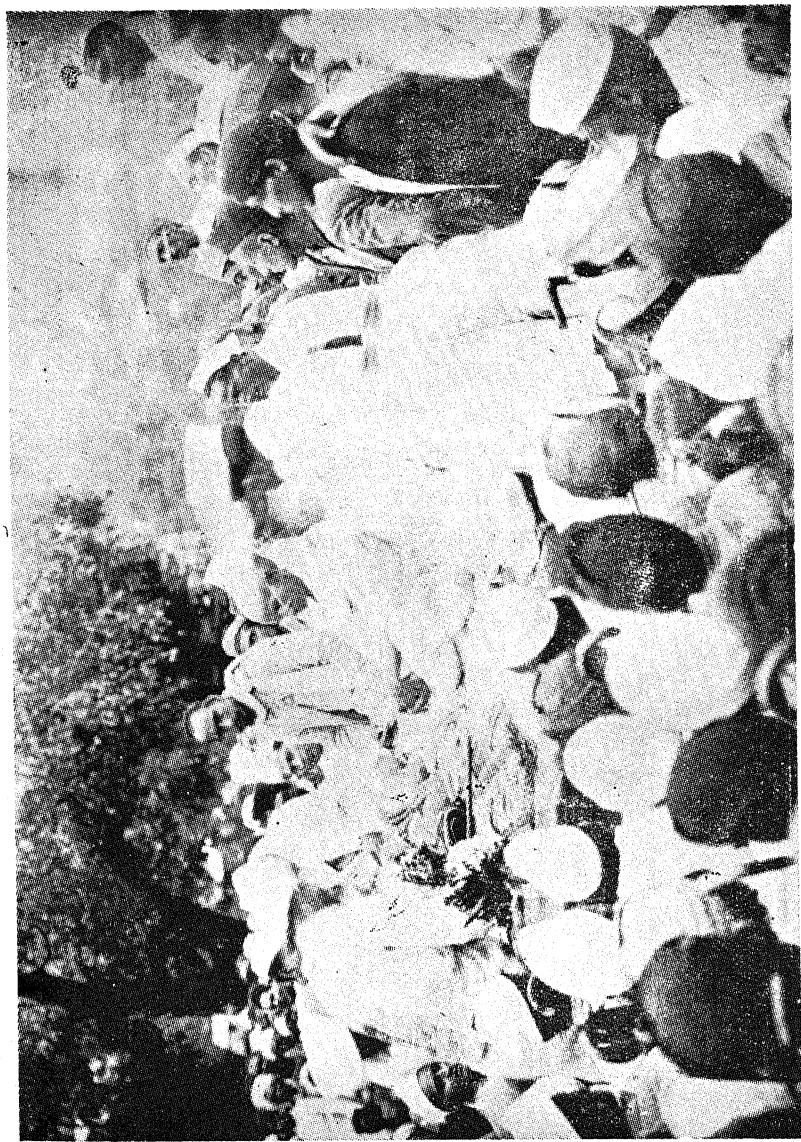
सन् १९२९ में परमपूज्य **महात्मा गान्धीं** ने हल्द्वानी, ताकुला (नैनीताल), नैनीताल, भवाली, ताड़ीखेत, अल्मोड़ा, बागेश्वर तथा कौसानी की यात्रा कर जनता में खादी प्रचार, स्वावलम्बन और राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार किया। अल्मोड़ा की एक जनसभा में गान्धी जी बैठे हैं। उनके साथ उनके अनुयाई मोहन जोशी भी हैं।

सन् १९३० का वर्ष देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। २६ जनवरी, १९३० को उत्तराखण्ड (टिहरी रियासत को छोड़कर) में स्थान-स्थान पर राष्ट्रीय झण्डा फहराकर प्रथम स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया और उससे सम्बन्धित प्रतिज्ञा-पत्र पढ़ा गया। जनवरी, १९३० ई० में स्वराज्य की कल्पना का प्रचार करने हेतु देशभक्त मोहन जोशी ने अल्मोड़ा से 'स्वाधीन प्रजा' नामक राष्ट्रीय पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस पत्र में उन्होंने 'पस्त हिम्मत सरकार' और 'पिण्डर की सैर' नामक शीर्षकों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार और उसके कर्मचारियों के अत्याचारों पर तीव्र प्रहार किया, अतः सरकार ने 'स्वाधीन प्रजा' पर छः हजार रुपये की जमानत लगा दी। जमानत देना जोशी जी व 'स्वाधीन प्रजा' के स्वाभिमान के विरुद्ध था, अतः पत्र का प्रकाशन बन्द हो गया।

मार्च, १९३० ई० में गान्धी जी ने अपने अठत्तर सत्याग्रही सैनिकों के साथ नमक-कर के उल्लंघन हेतु साबरमती से डाण्डी तक की प्रसिद्ध ऐतिहासिक यात्रा प्रारम्भ की, जिसमें उत्तराखण्ड के तीन सत्याग्रही सैनिकों—अड़सठवें नम्बर के सत्याग्रही सैनिक ज्योतिराम काण्डपाल, सत्तरवें नम्बर के सत्याग्रही सैनिक भैरव दत्त जोशी और गोरखावीर खड्क बहादुर ने भाग लिया। कुमाऊँ में नमक-सत्याग्रह का नेतृत्व गोविन्दबल्लभ पन्त ने किया। उन्हीं के कारण नैनीताल नमक-सत्याग्रह का केन्द्र बन गया। गोविन्दबल्लभ पन्त के गिरफ्तार हो जाने पर इन्द्रसिंह नयाल ने नैनीताल में नमक-सत्याग्रह का नेतृत्व किया, किन्तु उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। नैनीताल में स्वयंसेवकों ने नमक बनाकर नमक-कर का उल्लंघन किया। २६ मई, १९३० को शान्तिलाल त्रिवेदी और मोहन जोशी के नेतृत्व में स्वयंसेवकों के एक दल ने अल्मोड़ा नगरपालिका के भवन पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने की चेष्टा की, लेकिन गोरखा सैनिकों ने नेताओं और स्वयं-सेवकों पर लाठियों से घातक प्रहार कर उन्हें ऐसा नहीं करने दिया।

सन् १९३० का वर्ष ब्रिटिश गढ़वाल के लिए नई क्रान्ति का वर्ष सिद्ध हुआ। सन् १९३० में दोगड्डा में राजनैतिक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसे ब्रिटिश गढ़वाल का प्रथम राजनैतिक सम्मेलन कहा जाता है। तत्पश्चात् पौड़ी और कोट महादेव में राजनैतिक सम्मेलन हुए जिनमें सत्याग्रह संचालित करने के कार्य-क्रम निश्चित किए गये। इसी वर्ष अप्रेल में चन्द्रसिंह गढ़वाली के नेतृत्व में २/१८ गढ़वाल रायफल्स के सैनिकों ने पेशावर में देश की निहत्थी जनता पर गोली चलाने से इनकार करते हुए ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अपनी विद्रोही भावना को प्रकट कर दिया। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को गतिशीलता प्रदान हुई।

सन् १९२९ में टिहरी राज्य की ओर से नया वन-बन्दोवस्त हुआ, जिसमें जनता की सुविधाओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। रवाँई की जनता ने इसका विरोध कर 'आजाद पंचायत' की स्थापना कर डाली और जंगलों को क्षति पहुँचाना प्रारम्भ किया। कई बार राज्य कर्मचारियों और प्रजा के मध्य समझौते का प्रयत्न किया गया, लेकिन सफलता नहीं मिली। अन्त में ३० मई, १९३० को राज्य के दीवान चक्रधर जयाल ने अपना विवेक खोकर तिलाड़ी के मैदान में सेना द्वारा जनता पर गोलियाँ चलवा दीं। इस गोलीकाण्ड में सत्तरह व्यक्ति मारे गये और अनेक घायल हुए। इसे टिहरी का जलियानवाला भी कहा जाता है।

देहरादून जिले में भी नमक-सत्याग्रह बड़े जोरों से चला। नरदेव शास्त्री को इस सत्याग्रह में जिले का डिक्टेटर चुना गया। प्रत्येक दिन स्वयंसेवकों का जुलूस देहरादून से पश्चिम की ओर छः मील दूर खाराखेत में नमक बनाकर बाजार में लौटता था और फालतू लाइन (देहरादून) के मैदान में नमक की पुड़िया बनाकर बेची जाती थीं।

इस प्रकार उत्तराखण्ड में नमक-आन्दोलन ने व्यापक रूप से जोर पकड़ा। जहाँ नमक उपलब्ध नहीं हो पाया, वहाँ सरकार की अन्य अत्याचारी नीतियों के विरोध में आन्दोलन चले। सरकार ने आन्दोलन को विफल करने के लिए प्रमुख नेताओं और कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया था।

सन् १९२९ से १९३३ ई० की अवधि में भारतवर्ष में क्रान्तिकारी आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर थे। अखिल भारतीय क्रान्तिकारी संगठनों में भी उत्तराखण्ड पीछे नहीं रहा। यहाँ के निवासी भवानीसिंह, इन्द्रसिंह गढ़वाली, बच्चूलाल (ये तीनों गढ़वाली थे) ने चन्द्रशेखर आजाद, शम्भूनाथ आजाद, रोशनलाल मेहरा द्वारा स्थापित क्रान्तिकारी संगठनों में सक्रिय भाग लिया। भवानी सिंह 'गाड़ोदिया स्टोर डकैती' में भाग लेकर चन्द्रशेखर आजाद के नेतृत्व में क्रान्तिकारी दल को पिस्तौल की ट्रेनिंग देने के लिए दोगड्डा लाये। इन्द्रसिंह ने 'हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातान्त्रिक संघ', 'नौजवान भारत-सभा' तथा १९३३ ई० में मद्रास बमकाण्ड में भाग लिया; पकड़े जाने पर उन्होंने अण्डमान में बीस वर्ष की सजा पाई। बच्चूलाल ने ऊटी बैंक की डकैती में भाग लिया और पकड़े जाने पर अठारह वर्ष की सजा पाई।

सन् १९३२ से १९३४ ई० के मध्य कुमाऊँ कमिश्नरी में अछूतोद्धार कार्यक्रम अपनाया गया। सन् १९३२ में बद्रीदत्त जोशी एडवोकेट की अध्यक्षता में अल्मोड़ा में 'कुमाऊँ समाज सुधार सम्मेलन' आयोजित किया गया, जिसमें समाज
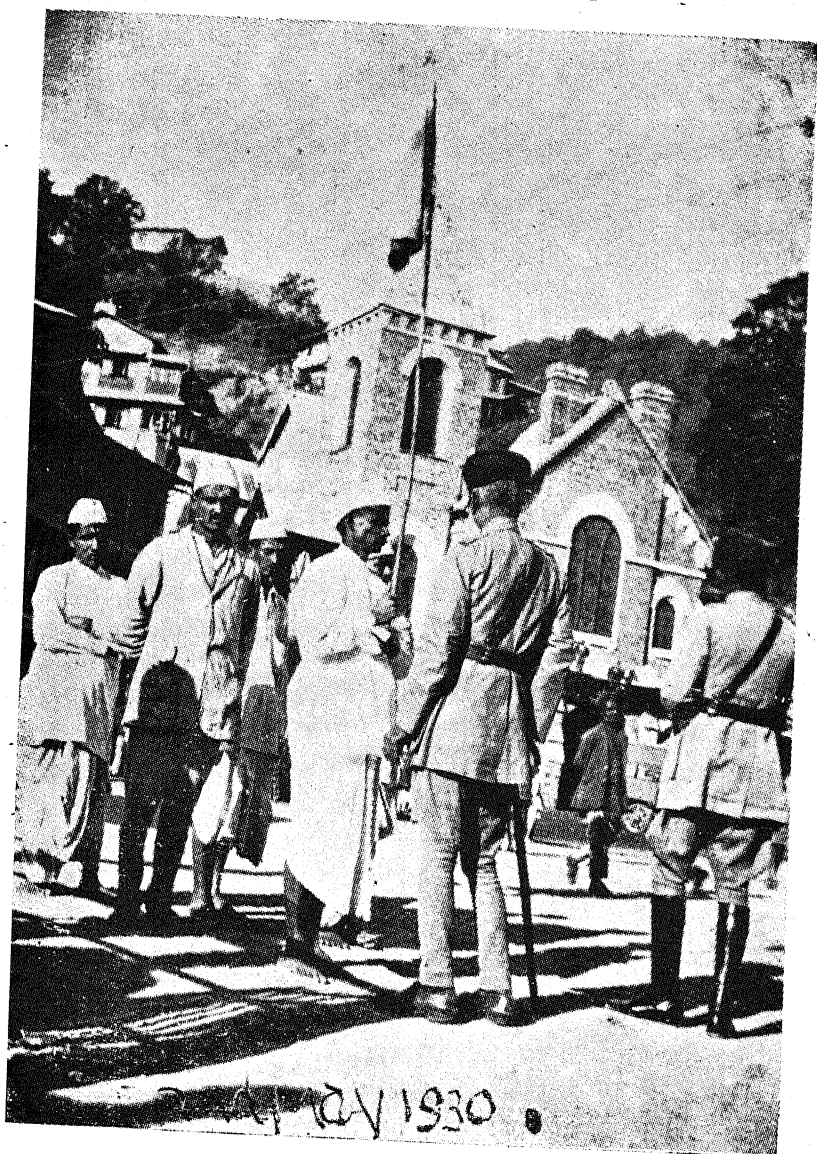
१६३० ई० में नैनीताल में हुए झण्डा सत्याग्रह का एक चित्र । झण्डा देशभक्त भगीरथ पाण्डे के हाथों में है ।

में व्याप्त कठोर वर्ण-व्यवस्था की निन्दा की गई और शूद्रों की उत्पत्ति अन्य वर्णों के समान मानी गई। इसी वर्ष दोगड्डा में दलितोद्धार कॉन्फ्रेंस आयोजित की गई, जिसमें शूद्रों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गई। देहरादून में सन् १९३२ में करबन्दी आन्दोलन, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और शराब की भट्टियों पर धरना देने का आन्दोलन ऋषिकेश से प्रारम्भ हुआ। वहाँ कई साधुओं ने धारा एक सौ चवालीस का उल्लंघन कर आन्दोलन का श्रीगणेश किया।

सन् १९३८ में श्रीनगर (गढ़वाल) में एक वृहद् राजनैतिक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें जवाहरलाल नेहरू व विजयलक्ष्मी पण्डित ने भी भाग लिया। इस सम्मेलन में दोनों गढ़वालों (ब्रिटिश गढ़वाल तथा टिहरी गढ़वाल) की अखण्डता और गढ़वाल में गाड़ी की सड़कों पर जोर दिया गया। इसी समय गढ़वाल में जागृत गढ़वाल संघ की स्थापना हुई जिसने पाँच आना बढ़ी लगान के विरुद्ध तथा मोटर मार्गों के निर्माण हेतु जन-आन्दोलन प्रारम्भ किया। इसमें उसे काफी सफलता मिली।

सन् १९४०–४१ ई० में कुमाऊँ कमिश्नरी में व्यक्तिगत सत्याग्रह बड़े जोरों से चला, लेकिन ब्रिटिश गढ़वाल में डोला-पालकी की समस्या के उठ जाने के कारण गान्धी जी ने वहाँ के व्यक्तिगत सत्याग्रह पर रोक लगा दी। गढ़वाली कार्यकर्ताओं ने डोली-पालकी की समस्या को दूर करने के लिए २३ फरवरी, १९४१ को लैंसडौन में 'डोला-पालकी सम्मेलन' आयोजित किया और दृढ़ संकल्प के साथ डोला-पालकी के अन्तर्गत हरिजनों पर होने वाले अत्याचारों को बन्द करने का निश्चय किया। सम्मेलन की सफलता से प्रसन्न होकर गान्धी जी ने सत्याग्रह पर लगा प्रतिबन्ध उठा लिया।

२३ फरवरी, १९३९ को देहरादून में टिहरी राज्य प्रजामण्डल की स्थापना हुई। कुछ महीनों के बाद युवा नेता श्रीदेव सुमन ने प्रजामण्डल का सक्रिय सदस्य बन कर उसमें नये जीवन का संचार कर दिया। इसी वर्ष गढ़वाल में टिहरी राज्य के अत्याचारों तथा जनता में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार करने के लिए 'कर्मभूमि' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। सन् १९४० में 'प्रताप इण्टर कॉलेज' टिहरी के विद्यार्थियों ने स्कूल के कर्मचारियों तथा प्रधानाचार्य की शोषणनीति के विरुद्ध आन्दोलन किया। विद्यार्थियों ने राज्य में गुमनाम पोस्टर चिपकाकर अपना असन्तोष व्यक्त किया। राज्य की ओर से कुछ विद्यार्थियों को दण्डित व कुछ को विद्यालय से निष्कासित कर दिया गया। धीरे-धीरे विद्यार्थी-आन्दोलन में शिथिलता आने लगी।

८ अगस्त, १९४२ को बम्बई में काँग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ताओं की गिर-

फ्तारी के विरोध में ६ अगस्त, १६४२ को उत्तराखण्ड में स्थान-स्थान पर जुलूस निकले और हड़तालें हुईं। अल्मोड़ा नगर में विद्यार्थियों ने पुलिस पर पत्थरों से प्रहार किया, जिससे कुमाऊँ के कमिश्नर एक्टन के सिर पर चोट आई। अल्मोड़ा शहर पर छः हजार रुपये का जुर्माना किया गया और कुछ विद्यार्थियों को विद्यालय से निष्कासित कर दिया गया। अल्मोड़ा जिले में सर्वप्रथम १८ अगस्त, १६४२ को देघाट (मल्लाचौकोट) नामक स्थान पर पुलिस ने जनता की भीड़ पर गोलियाँ चलाईं जिसमें हीरामणी और हरिकृष्ण नामक दो व्यक्ति शहीद हुए। अल्मोड़ा जिले के सालम क्षेत्र में दुर्गादत्त पाण्डे, रामसिंह आजाद, रेवाधार पाण्डे, प्रतापसिंह बौरा, टीकासिंह, नरसिंह आदि देश भक्तों के प्रयत्नों के फलस्वरूप अभूतपूर्व जागृति व्याप्त थी। वहाँ पहले सरकारी कर्मचारियों का दल जनता को दबाने के लिए भेजा गया था, लेकिन जब सालम की साहसी जनता ने उन्हें पीट कर अल्मोड़ा भेज दिया तो ब्रिटिश सरकार ने क्रोधित होकर वहाँ ब्रिटिश सेना भेजी। सेना और जनता के मध्य धामदेव नामक ऊँचे टीले पर पत्थर और गोलियों से तीव्र संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में जनता के दो प्रमुख नेता, नरसिंह धानक शहीद तथा टीकासिंह कन्याल, बुरी तरह घायल हो गये और कुछ दिनों बाद अस्पताल में मर गये। इसके बाद डिप्टी कलक्टर मेहरबानसिंह के नेतृत्व में सालम में जाट सेना भेजी गई जिसने वहाँ अनेक अत्याचार किए और जनता की सम्पत्ति को लूटकर उन्हें आतंकित कर दिया।

सालम की भाँति सल्ट क्षेत्र ने भी १६४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। वहाँ खुमाण (जो सल्ट में काँग्रेस का मुख्यालय था) नामक स्थान पर रानीखेत तहसील के एस० डी० एम० जॉनसन ने जनता पर गोलियाँ चलवाईं, जिसमें गंगादत्त तथा खीमदेव दो सगे भाई घटना-स्थल पर ही शहीद हो गये और बुरी तरह घायल चूड़ामणी और बहादुरसिंह चार दिन बाद शहीद हुए। खुमाण गोलीकाण्ड में कई अन्य व्यक्ति भी घायल हुए। स्वतन्त्रता-संग्राम में सल्ट के महत्वपूर्ण तथा साहसपूर्ण योगदान से प्रभावित होकर महात्मा गान्धी ने उसे दूसरी 'बारडोली' की संज्ञा देकर गौरवान्वित किया।

सन् १६३७ में महात्मा गान्धी के परम शिष्य शान्तिलाल त्रिवेदी के सतत् प्रयत्नों से खादी-प्रचार हेतु चनौदा (अल्मोड़ा) नामक स्थान पर 'गान्धी-आश्रम' की स्थापना हुई। इस आश्रम के सभी कार्यकर्ता देशभक्त तथा गान्धी-भक्त थे, अतः यह आश्रम उस क्षेत्र में राजनैतिक जागृति का केन्द्र बना हुआ था। २ सितम्बर, १६४२ को अल्मोड़ा जिले के डिप्टी कमिश्नर ने 'चनौदा गान्धी आश्रम' में प्रवेश किया और उसके कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर अल्मोड़ा जेल में बन्द कर दिया; साथ ही आश्रम पर ताला लगाकर वहाँ के सामान का नीलाम

कर दिया। स्वतन्त्रता के बाद यह आश्रम पुनः संचालित हुआ और वर्तमान समय में यह उत्तराखण्ड में खादी का प्रमुख केन्द्र है।

नैनीताल जिले में भी 'भारत छोड़ो' आन्दोलन ने अपना उग्र रूप दिखाया। नैनीताल में कुछ साहसी युवकों ने फरार रहकर टेलीफोन के तार काट दिये; दीवानसिंह ने मंगोली में जंगलात का डाकबँगला जला दिया; रामनगर का डाकबँगला, भीमताल का अंग्रेजी होटल, नैनीताल का जंगलात का कार्यालय भी अग्नि की लपटों को भेंट कर दिये गये। इनमें से कुछ युवकों को गिरफ्तार किए जाने पर जब उन पर मुकदमा दायर किया गया तो उनकी ओर से वकालत करने का साहस किसी भी वकील को नहीं हुआ, तब इन्द्रसिंह नयाल ने उन अभियुक्तों की निःशुल्क पैरवी कर अपनी देशभक्ति का अनुपम उदाहरण जनसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया।

ब्रिटिश गढ़वाल जिले में चमोली तहसील का सब-पोस्ट-आफिस जलाने का प्रयास किया गया, टेलीफोन के तार काट दिये गये। खदेड़ पट्टी में सियाषेण के जंगलात का बँगला जला दिया गया। छवाड़सिंह नेगी के नेतृत्व में कुछ लोगों ने हरिद्वार से रामनगर तक जमा सरकारी लकड़ियों को फूँकने की योजना बनाई, लेकिन गुप्तचरों के माध्यम से अंग्रेजों को इस योजना का पता लग गया, जिससे यह योजना असफल हो गई। पौड़ी में नवयुवकों और विद्यार्थियों ने एक भारी जुलूस निकाला। इस जुलूस का नेतृत्व एक रायबहादुर का लड़का कर रहा था। इसके बाद विद्यार्थियों ने विद्यालयों का बहिष्कार कर राष्ट्रीय आन्दोलन में जनता का हाथ बँटाया। स्थान-स्थान पर जनता की अदालतें स्थापित की गईं। स्वयंसेवकों की भर्ती और प्रशिक्षण के लिए शिविरों की स्थापना की गई। कुछ दिनों के लिए ब्रिटिश गढ़वाल में ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया। आन्दोलन को दबाने के लिए सरकार ने दमन नीति का आश्रय लिया। ब्रिटिश गढ़वाल में चार व्यक्तियों को गोली से उड़ा दिया गया और ५,९५९ रुपये का जुर्माना किया गया।

देहरादून में डी० ए० वी० कॉलेज के छात्रों ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की अवधि में एक जुलूस निकाला। वहाँ एक्सले हॉल की दुकानों व होटलों पर गोरा सैनिक घूमने आये थे। विद्यार्थियों ने गोरा सैनिकों पर पथराव कर दिया; परिणामस्वरूप कुछ गोरा सैनिक घायल हुए। देहरादून शहर में जब आन्दोलन जोर पकड़ता गया तो पुलिस ने आन्दोलनकारियों को गाड़ियों में भरकर नगर से छः सात मील दूर निर्जन वन में छोड़ देने की नीति अपनाई। धीरे-धीरे आन्दोलन धीमा पड़ गया।

यह एक महत्वपूर्ण बात है कि सन् १९२१ में उत्तराखण्ड की महिलाओं ने भी स्वतन्त्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दिया जिनमें शर्मदा त्यागी, कुन्थीदेवी वर्मा, मंगलादेवी वर्मा, भगीरथीदेवी वर्मा, जीवन्तीदेवी ठकुरानी, रेवतीदेवी वर्मा, शोभादेवी मित्तल, रानी बिमलादेवी, सावित्रीदेवी, जानकी देवी शाह, शकुन्तलादेवी, पद्मादेवी जोशी आदि महिलाओं का नाम उल्लेखनीय है।

उत्तराखण्ड-निवासियों का सर्वाधिक योगदान नेताजी सुभाषचन्द्र बोस द्वारा भारतवर्ष की स्वाधीनता के लिए संगठित आजाद हिन्द फौज में रहा है। उन्होंने अपनी प्रिय मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए रणक्षेत्र में अपने अद्वितीय रणकौशल और अदम्य साहस का परिचय देते हुए सहर्ष मृत्यु का आलिंगन किया था, जिनमें महेन्द्रसिंह बागड़ी और ज्ञानसिंह विष्ट के नाम महत्वपूर्ण हैं। अपने अनेक गुणों के कारण उत्तराखण्ड-निवासियों ने नेताजी का मन मोह लिया और आजाद हिन्द फौज में उच्च एवं महत्वपूर्ण पद प्राप्त कर लिये।

सन् १९४६ में टिहरी राज्य की शोषण नीति के विरुद्ध दौलतराम और युवा नेता नागेन्द्र सकलानी के नेतृत्व में जन-आन्दोलन ने तीव्र रुख अपनाया। १५ अगस्त, १९४७ ई० में भारतवर्ष को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, किन्तु टिहरी एक रियासत होने के कारण १५ अगस्त, १९४७ की यह स्वतन्त्रता उसे नसीब नहीं हो पाई। देश में स्वतन्त्रता दिवस धूमधाम से मनाया गया। रियासतों को छोड़कर देश के अन्य भागों की नागरिक-स्वतन्त्रता से प्रभावित होकर टिहरी की जनता में भी स्वतन्त्रता की भावना प्रबल होने लगी; फलतः वहाँ के जन-आन्दोलनों को एक नई गति और दिशा प्रदान हुई। सन् १९४७ में टिहरी राज्य के विरुद्ध आन्दोलन भड़क उठा। १६ दिसम्बर, १९४७ को सकलाना के मुआफीदारों ने अपने समस्त अधिकार 'टिहरी राज्य प्रजामण्डल' को सौंपकर आजादी की घोषणा कर दी; अस्तु सकलाना में प्रजामण्डल ने 'आजाद पंचायत' कायम कर राज्य कर्मचारियों को वहाँ से बाहर निकाल दिया। तत्पश्चात् आन्दोलन जोर पकड़ते गया। १० जनवरी, १९४८ को जनता ने नागेन्द्र सकलानी के नेतृत्व में कीर्तिनगर की अदालत पर अधिकार कर लिया। रियासत के सैनिकों ने अदालत पर पुनः अधिकार करना चाहा, अतः सेना व जनता में तीव्र संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में नागेन्द्र सकलानी और मोलूराम मारे गये। इसके बाद कीर्तिनगर में भी 'आजाद पंचायत' की स्थापना हुई और शहीदों का जनाजा लेकर वृहद् जनसमूह टिहरी नगर की ओर गया। राजा नरेन्द्र शाह वहाँ से नरेन्द्र नगर चले गये। इस प्रकार टिहरी नगर पर भी जनता का अधिकार हो गया और वहाँ आजाद पंचायत की स्थापना हो गई। टिहरी नगर में राज्य के प्रमुख कार्यालयों पर

'आजाद पंचायत' का झण्डा फहराने लगा। इसके बाद टिहरी में 'अन्तरिम सरकार' की स्थापना की गई और १ अगस्त, सन् १९४९ को उसका भारतवर्ष में विलीनीकरण हो गया।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के लिए हुए अहिंसात्मक तथा हिंसात्मक आन्दोलनों में उत्तराखण्ड ने महत्वपूर्ण भाग लेकर सांस्कृतिक क्षेत्र की भाँति राजनैतिक क्षेत्र में भी अपनी श्रेष्ठता प्रतिष्ठित की।

देशभक्त मोहन जोशी (१८८६-१९४० ई०)

"भारत मेरी माता है। उसका दुःख अथाह है। मैं उसका बच्चा होकर इस दुःख को नहीं देख सकता। इस दुःख को दूर करने के लिए मैं पूर्ण विश्वास करता हूँ कि स्वराज्य पहली सीढ़ी है। हमारी हर समस्या को सुलझाने में स्वराज्य बड़ी सहायता दे सकता है। स्वराज्य के लिए जो हमें रोकेगा, हम उसकी कोई परवाह नहीं करेंगे; क्योंकि हमारा कार्य ईश्वरीय कार्य है और उस पर स्वाधीनता देवी की छाप है। मैं प्रभु ईश का चेला हूँ। मुझे किसी का डर नहीं। मेरे प्रभु ने संसार के लिए प्राण दे दिये। क्या मैं अपने देश के लिए कुछ नहीं करूँगा?"

देशभक्त मोहन जोशी का जन्म सन् १८८६ ई० में नैनीताल में हुआ था। उनके पिता जयदत्त जोशी पर अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव होने एवं हिन्दुओं के कट्टर सामाजिक नियमों से ऊब जाने के कारण उन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। फलस्वरूप मोहन जोशी का नाम विक्टर जोजफ पड़ा, किन्तु इनकी माँ ने इनका नाम मोहन रखा और कहा, "मैं तो मोहन ही कहूँगी, बड़ा होकर यह जिस नाम को पसन्द करेगा, उसे स्वयं चुन लेगा।" दुर्भाग्यवश केवल बारह वर्ष की अवस्था में ही उन्हें मातृ-स्नेह से वंचित होना पड़ा।

मोहन जोशी के पिता सरकारी खजाने में प्रधान लिपिक थे। तत्पश्चात् कुछ समय तक पादरी भी रहे। मोहन जोशी का पूरा नाम 'विक्टर जोजफ मोहन जोशी' था। मोहन जोशी को हिन्दू धर्म से अगाध प्रेम था, अतः स्वतन्त्रता-संग्राम में कूदने के तुरन्त बाद उन्होंने अपने नाम के आगे लगने वाला 'विक्टर जोजफ' विदेशी शब्द हटा दिया था। मोहन जोशी ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा रामजे हाईस्कूल, अल्मोड़ा में प्राप्त की। विद्यार्थी-काल से ही उनमें नेता के गुण झलकते थे। उन्होंने छोटी अवस्था में ही अल्मोड़ा में "क्रिश्चियन फ्रैण्ड्स एसोसियेशन" (C. F. A.) की स्थापना की और इसमें सदस्य संख्या बढ़

जाने पर इसे 'क्रिश्चियन यंग पीपुल सोसायटी' (C. Y. P. S.) का नाम दे दिया।

१९१४ ई० में देश में होमरूल आन्दोलन चला। अल्मोड़ा में भी जोशीजी के प्रयत्नों से होमरूल लीग की स्थापना हुई, जिसमें इनके प्रभाव के कारण एक अंग्रेज महिला भी सम्मिलित हुई। सन् १९१६ ई० में 'कुमाऊँ-परिषद्' नामक राजनैतिक संस्था की स्थापना हुई। इन दोनों संस्थाओं की स्थापना में मोहन जोशी का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

मोहन जोशी प्रखर बुद्धि के युवक थे। १९१७ ई० में उन्होंने ईविन क्रिश्चियन कॉलेज, इलाहाबाद से बी०ए० की परीक्षा पास की। वे हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। मोहन जोशी पर 'भारत में अंग्रेजी राज' नामक पुस्तक के लेखक सुन्दरलाल एवं उनके द्वारा ही प्रकाशित की जाने वाली राष्ट्रीय पत्रिका 'स्वराज्य' का व्यापक प्रभाव था। बी० ए० पास करने के पश्चात् मोहन जोशी के पिता उन्हें उच्च सरकारी पद दिलाना चाहते थे, परन्तु उन्होंने देशसेवा हेतु नौकरी करने से इनकार कर दिया और अंग्रेजों को चुनौती दी।

शिक्षा पूरी कर जोशीजी अल्मोड़ा आये और राष्ट्रीय कार्यों में व्यस्त हो गये। इसी समय उन्होंने देखा कि भारतीय ईसाई समाज में राष्ट्रीय भावना के प्रचार करने की विशेष आवश्यकता है और स्वयं एक ईसाई होने के नाते उन्होंने अनुभव किया कि इस ओर ध्यान देना उनका विशेष कर्त्तव्य है। अतः उन्होंने प्रयाग से ही 'क्रिश्चियन नेशनलिस्ट' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र २० सितम्बर १९२० ई० से निकालना प्रारम्भ कर दिया। उक्त पत्र राष्ट्रीय विचारधाराओं से ओत-प्रोत होता था और विशेषकर ईसाई समाज को आग्रहपूर्वक याद दिलायी जाती थी कि उनके धर्मगुरु हजरत ईसा फिलिस्तीन देश के यहूदियों की आजादी के लिये सूली पर चढ़े थे। अतः उनके सच्चे अनुयायी कदापि गुलामी में रहना सहन नहीं कर सकते हैं और यह उनका कर्त्तव्य है कि जिस देश में उनका जन्म हुआ है, उसकी स्वतन्त्रता के लिए वे भी अपने अन्य देशवासियों का हाथ बँटायें। वह हमेशा भारत की प्राचीन फिलिस्तीन देश से तुलना किया करते थे। यह पत्र मोहन जोशी की दृढ़ता, उत्साह, साहस और राष्ट्रीयता की भावना का परिचायक था और इसके माध्यम से उन्होंने विचारशील ईसाइयों को राष्ट्रीय आन्दोलनों में खींच लिया। अल्मोड़ा के पादरी यूनससिंह, डॉ० मनोहरसिंह, जैमान आदि ईसाई काँग्रेस से सहानुभूति रखने लगे। जोशी जी की उग्र राष्ट्रीय भावनाओं से प्रभावित होकर गान्धी जी ने उन्हें अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी का सदस्य

बना लिया। क्रिश्चियन नेशनलिस्ट पत्र अधिक समय तक न चल पाया। सन् १९२१ ई० में मोहन जोशी स्थायी रूप से अल्मोड़ा आ गये और राष्ट्रीय कार्यों में जुट गये।

मोहन जोशी एक महान् देशभक्त थे; जैसा कि उनकी प्रतिज्ञा से स्पष्ट हो जाता है—"भारत मेरी माता है। उसका दुःख अथाह है। मैं उसका बच्चा होकर इस दुःख को नहीं देख सकता। इस दुःख को दूर करने के लिए मैं पूर्ण विश्वास करता हूँ कि स्वराज्य पहली सीढ़ी है। हमारी हर समस्या को सुलझाने में स्वराज्य बड़ी सहायता दे सकता है। स्वराज्य के लिए जो हमें रोकेगा, हम उसकी कोई परवाह नहीं करेंगे; क्योंकि हमारा कार्य ईश्वरीय कार्य है और उस पर स्वाधीनता देवी की छाप है। मैं प्रभु ईश का चेला हूँ। मुझे किसी का डर नहीं। मेरे प्रभु ने संसार के लिए प्राण दे दिये। क्या मैं अपने देश के लिये कुछ नहीं करूँगा?"

जनवरी सन् १९२१ ई० को बागेश्वर के मकर संक्रान्ति के मेले में कुली उतार, कुली बेगार और कुली बर्दायश नामक कुप्रथाओं का अन्त हुआ। इस समय से बागेश्वर का समस्त उत्तराखण्ड के लिए महत्व बढ़ गया था; फलस्वरूप अब प्रत्येक वर्ष राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता यहाँ आने लगे और मेले में आयी हुई जनता में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार करने लगे। इसी उद्देश्य से सन् १९२३ ई० में मोहन जोशी बागेश्वर गये, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने वहाँ धारा १४४ लगा दी। जोशी जी ने ब्रिटिश सरकार की चुनौती को सहर्ष स्वीकार कर सर्वप्रथम धारा १४४ का उल्लंघन किया। फलस्वरूप उन्हें गिरफ्तार कर बरेली जेल में भेज दिया गया और डेढ़ वर्ष की कारावास की सजा के पश्चात् छूटे।

इसके पश्चात् जोशी जी कुछ समय तक 'शक्ति' के सम्पादक रहे। सन् १९२५ ई० के बागेश्वर मेले में मोहन जोशी ने खादी प्रदर्शनी का आयोजन किया। जोशी जी में विचित्र आकर्षण शक्ति थी, जिससे वह उत्साही नौजवानों को तुरन्त अपनी ओर खींच लेते थे। सन् १९२५ ई० में उनकी नियुक्ति जिला-परिषद् के मंत्री पद पर एक सौ पचास रु० मासिक पर हुई, परन्तु इस देशभक्त ने एक सौ पचास रु० में से पचहत्तर रु० प्रति माह कताई तथा खादी प्रचार पर लगा दिये। उन्होंने जिला-परिषद् में एक अलग खादी विभाग खोला व स्कूलों में कताई योजना प्रस्तुत कर पाँच सौ रु० वार्षिक जिला-परिषद् से मंजूर करवाया। मोहन जोशी के प्रयासों से जिले के प्रायः सभी मेलों में "कतुवा दंगल" जिला-परिषद् की ओर से होने लगा था। इसमें विद्यार्थी होते थे, जिन्हें पारितोषक भी मिलता था। विद्यार्थियों द्वारा कती हुई ऊन के तागे की बुनाई के लिये जोशीजी की प्रेरणा पर जिला-परिषद् द्वारा अल्मोड़ा नगर में वयनशाला

खोली गयी, जहाँ ऊन की बुनाई व रँगाई होती थी। मंत्री पद पर कार्य करते हुए जोशी जी ने काष्ठकला की शिक्षा देने हेतु कारपेण्ट्री स्कूल खुलवाया और जिला-परिषद् के सदस्यों को खादी पहनने का साधिकार आदेश दिया। जोशी जी ने अपनी सेवावृत्ति एवं निस्स्वार्थ भावनाओं से जिला-परिषद् के सीमित साधनों द्वारा जनता की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति की। लोककवि गौर्दा द्वारा रचित—

"कतुवा कातुलों ईजू, तेरी जै-जै बोल,
बटुवा भरुला ईजू, तेरी जै-जै बोल।"

कविता मोहन जोशी को अत्यधिक प्रिय थी। कुछ समय कार्य करने के पश्चात्, जिला-परिषद् पर सरकारी दबाव एवं उसकी अनेक नीतियों के विरोध में उन्होंने अपना त्यागपत्र दे दिया।

इसके पश्चात् जोशी जी पूर्ण रूप से बागेश्वर में स्वराज्य-मन्दिर की स्थापना और खादी प्रचार में लग गये और उन्होंने अपना शेष धन भी खद्दर की दुकान में लगा दिया। सन् १९२८ ई० में वे बागेश्वर में खद्दर की प्रदर्शनी आयोजित करने के लिए कई माह पूर्व से जुट गये। यह प्रदर्शनी सफल रही और ब्रिटिश सरकार द्वारा जनता में खद्दर के 'निकम्मा कपड़ा' होने के विषय में फैलायी गयी भ्रान्ति दूर हो गयी। जनता को ज्ञात हो गया कि हाथ का बुना कपड़ा कितना सुन्दर हो सकता है।

जिला-परिषद् से मुक्ति पाने के पश्चात् जोशी जी रचनात्मक कार्यों द्वारा काँग्रेस संगठन को मजबूत बनाने में एकजुट हो गये। जोशी जी के समकालीन महान् स्वतन्त्रता-सेनानियों हरगोविन्द पन्त एवं शान्तिलाल त्रिवेदी के शब्दों में "जोशी जी के निस्स्वार्थ जीवन में बड़े महत्व की बात यह थी कि सारे जिले में बड़ा प्रभाव रखते हुए भी उन्होंने स्वयं चुनाव में खड़े होने की कभी कामना नहीं की, वरन् जब कभी मित्रों ने उनसे खड़े होने के लिए आग्रह किया भी, तो उन्होंने अपनी अनिच्छा ही प्रकट की।"

सन् १९२८ में संयुक्त प्रान्त के लाट साहब सर मालकम हेली अल्मोड़ा आये। उनसे मिलना सरल बात नहीं थी और वह भी जनता के प्रतिनिधि का ! मोहन जोशी ने बड़ी कठिनाई से उनसे भेंट की और उनके सम्मुख किसानों की कठिनाइयों को रक्खा।

सन् १९२९ ई० में गान्धी जी ने कुमाऊँ के विभिन्न स्थानों की यात्रा की। कुमाऊँ में गान्धी जी के आगमन से जोशी जी को इतनी प्रसन्नता हुई, मानो भक्त

के घर भगवान आ गये हों। गान्धी जी की डाण्डी पर गरूड़ से बागेश्वर जाने में बारह मील तक उन्होंने कंधा नहीं बदला। इससे स्पष्ट हो जाता है कि गान्धी जी के प्रति उनके हृदय में कितना प्रेम व श्रद्धा थी। गान्धी जी मोहन जोशी के कार्यों एवं राष्ट्रीय भावनाओं से अत्यधिक प्रभावित हुए, जिसके फलस्वरूप ११ जुलाई १९२९ के 'यंग इण्डिया' में उन्होंने लिखा—"Syt. Victor Mohan Joshi, the christian nationalist worker of Almora one of the finest flowers of the Indian Christian Community who proved his mettle by his sefl sacrifice and suffering during the Non-co-operation movement." (अल्मोड़ा के ईसाई कार्यकर्ता श्रीयुत विक्टर मोहन जोशी ईसाई समाज के उत्कृष्टतम पुष्पों में से एक हैं, जिन्होंने असहयोग आन्दोलन में अपने आत्मत्याग एवं कष्ट सहिष्णुता द्वारा प्रमाणित किया कि वे किस धातु के बने हैं।")

'स्वाधीन प्रजा' साप्ताहिक

पहली जनवरी, १९३० ई० में जोशी जी ने राष्ट्रीय भावनाओं, प्रजातन्त्र की कल्पना, समानता, बन्धुता और आत्मसम्मान का प्रचार करने के लिए 'स्वाधीन प्रजा' नामक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। जवाहरलाल नेहरू एवं रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'स्वाधीन प्रजा' के लिए निम्न संदेश भेजे—

"मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि मेरे मित्र मोहन जोशी एक पत्रिका निकालने वाले हैं। मैं आशा करता हूँ कि यह पत्रिका देश की आजादी की लड़ाई में पूरी सहायता देगी और खासकर किसानों की तकलीफों को दूर करने की कोशिश करेगी।"

—जवाहरलाल नेहरू, ६ दिसम्बर १९२९

"आप जिस भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की रक्षा के उद्देश्य से साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित कर रहे हैं, उससे डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर सहानुभूति रखते हैं।"

—प्राइवेट सचिव, रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मोहन जोशी की लेखनी प्रभावपूर्ण और सशक्त होती थी। जोशी जी ने 'स्वाधीन प्रजा' के माध्यम से सरकार के उच्च अधिकारियों के कारनामों एवं सरकार की दमन नीति पर कुठाराघात किया, जिनमें से 'पिण्डर की सैर' और 'पस्त हिम्मत सरकार' शीर्षक के लेख उल्लेखनीय हैं—

'पिण्डर की सैर'—('स्वाधीन प्रजा', ३० अप्रैल १९३०, सत्रहवाँ अंक)

"सुनते हैं कि वे फिर आयेंगे। अल्मोड़ा जिले में वे दो-तीन बेर आ चुके हैं। शिकार के बड़े शौकीन हैं। पहिले दौरों में सालम में चकोर मारे, इस बेर पिण्डारी ग्लेशियर की ठण्डी हवा खाने की सोची है।

"शायद दिमाग कुछ गर्म हो गया है, रह-रह कर दमन की ज्वालाएँ हृदय में भड़क उठती होंगी। रायबेरली, हण्डिया, बनारस, कानपुर, आगरा, लखनऊ प्रान्त के सभी प्रमुख स्थानों में नमक-सत्याग्रह देखकर हुजूर का टेम्परेचर बढ़ गया होगा। प्रान्त के बड़े-बड़े नेताओं को जेल भेजकर भला पारा क्यों न बढ़ा होगा! क्या बिना खून खौले राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू जी को जेल भेज सकते थे? नहीं साहब, आपके हृदय में साम्राज्य के लिए बड़ा जोश है—उस गैरत की गर्मी बिना पिण्डारी-यात्रा के कैसे ठण्डी हो सकती है! साल भर आपने साम्राज्य के लिए अथक परिश्रम किया है—कहीं दरबार रचे, कहीं स्पीचें झाड़ीं, कहीं ताल्लुकेदारों और जमींदारों को पुचकार कर काँग्रेस के विरुद्ध किया है। अभी-अभी आप बुलन्दशहर तशरीफ ले गये थे। याद होगा वहाँ के स्वयंसेवकों ने काले झण्डे दिखाये थे और कैसे आपके चाकरों ने उन्हें पीटा था? फिर कैसे गिरफ्तार हुए थे? देश की लू और धूप में साम्राज्य के सेवक को इतनी परेशानी उठानी पड़े तो उसका कलेजा क्यों न सूख जाये? प्रान्त में पिण्डारी के समान दिल, दिमाग व देह को तरो-ताजा करने के लिए दूसरा स्थान कौन हो सकता है।

"पिण्डारी का रास्ता साफ है। डि० बोर्ड ने दूर-दूर से कुलियों की गैंगें बुलवाकर रास्ता कैसा उत्तम बना दिया है। चार हजार खर्च करके पुल और डाक बँगले भी दुरुस्त कर दिये हैं—कौन कहता है अल्मोड़ा डि० बोर्ड बागी बोर्ड है? जनाब को कष्ट क्यों होगा? बोझ ढोने को कुली और खच्चर मिलेंगे। स्वागत को कमिश्नर, डि० कमिश्नर, मजिस्ट्रेट, पेशकार, पटवारी और जी-हजूर तैयार रहेंगे। रहने को सुसज्जित डाकबँगले मिलेंगे और चलने को साफ सड़क। चलते-चलते शिकार भी होगा, पर्वत और घाटियों का सुन्दर दृश्य दिल को बाग-बाग कर देगा और पिण्डारी पहुँच कर तो स्वर्ग ही मिल जायेगा। यहाँ फिर आन्दोलन की चिन्ता न सतायेगी, नमक का झगड़ा तंग न करेगा। कुछ देरके लिए साहब को शायद "गाँधी की आँधी" से छुट्टी मिल जायेगी। पर शायद—शायद! पिण्डारी में भी वह आँधी पहुँच गयी तो बड़ी मुश्किल होगी। यह साल साम्राज्य के लिए बुरा जैसा है। अनहोनी होनी हो रही है। यदि काठगोदाम से पिण्डारी तक काले-काले झण्डे लेकर पर्वतों के कंकर-पत्थर कूद पड़े तो पिण्डारी का मजा किरकरा हो जाने का भय है। फिर तो पिण्डारी की गुफाओं में भी शान्ति नहीं मिलेगी। ग्लेशियर का शीतल हिम हृदय की आग को ठंडा न कर सकेगा, डि० बोर्ड की साफ सड़क भी अगम्य सी प्रतीत होगी। यह पर्वतीय बड़े बेढब हैं; पहले तो बिगड़ते नहीं, बिगड़ते हैं तो उन्हें रोकना कठिन हो जाता है। कुली उतार के समय बिगड़े थे तो रुक न सके, हार मानकर सरकार को सिर झुकाना पड़ा। यदि पिण्डारी यात्रा के समय इनमें उत्तेजना फैल गयी तो शिकार, सैर

और साम्राज्य सब हुजूर के दिमाग से काफूर हो जायेंगे। आपने पहाड़ी नदियाँ तो देखी होंगी ? बरसात के समय उनका विकराल रूप भी देखा होगा ? वे क्षणभर में आकाश में पहुँच जाती हैं; बड़े-बड़े पत्थरों को बहा लेजाती है; बड़े-बड़े खेतों और पुलों को गरज-गरज कर तोड़ देती हैं। यदि पिण्डारी यात्रा के समय ऐसा हो गया तो क्या करेंगे ? फिर जब सारे देश में आन्दोलन फैला है और आपने अपने प्रान्त में उस आन्दोलन को कुचलने में कुछ कसर नहीं की है, क्या आप सोचते हैं कूर्मांचल की जनता आपका स्वागत करेगी या आपको काले झण्डे दिखाकर 'गो बैक' का मंत्र सुनायेगी ? आप ही समझ सकते हैं—आपके सलाहकार आपको समझायेंगे। राष्ट्रपति जवाहरलाल जी को जेल में रखकर आप पिण्डारी की सैर करने चले हैं—क्या ऐसी स्थिति में आप आशा करते हैं कि हिमालय के इन दूरस्थ स्थानों में आपके लिए फाटक बनेंगे, आपको फूलमालायें पहिनाई जायेंगी ? थोड़ी भी दूरदर्शिता होगी तो ऐसे समय में आप पिण्डारी-यात्रा स्थगित करके चुपचाप नैनीताल गवर्नमेण्ट हाउस में ही रहकर सन्तुष्ट रहेंगे। पहिले भी आपने इस जिले में पदार्पण किये हैं, पर वह युद्ध का समय नहीं था। युद्ध के समय आप सैर करने की सोच रहे हैं—श्वेत हिम देखकर दिल ठण्डा करना चाहते हैं—काले झण्डे देखने को मिल गये तो सब आशाओं पर पानी फिर जायेगा।

"पिण्डारी की सैर सानन्द करनी है तो पं० जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओं को छोड़ो, दमन बन्द करो, नमक-कर तोड़ो और महात्मा गान्धी से हाथ मिलाओ। एक ओर दमन करो, दूसरी ओर आशा करो कि हम हिमालय की चोटियों में आनन्दपूर्वक सैर और शिकार करें; यह कैसे हो सकता है। यदि उस समय जब आप पिण्डारी को जायेंगे, काठगोदाम, भवाली, गरमपानी, रानीखेत, अल्मोड़ा, बागेश्वर, कपकोट इत्यादि की जनता शान्तिपूर्वक आपको काले झण्डे दिखलाकर अपना रोष प्रकट करे तो क्या आश्चर्य होगा ? सोचते होंगे कि कूर्मांचल में उत्तेजना नहीं है। जनाब उत्तेजना बहुत है पर उसे अभी प्रकट होने का मौका नहीं मिला है। ज्योंही पिण्डारी को सरकार की सवारी चलेगी तो उत्तेजित जनता को मौका मिलेगा कि आमने-सामने आपसे सवाल-जवाब करे कि आप भारत में यह क्या अन्धेर कर रहे हैं ? क्या आप उत्तर दे सकेंगे ?

"इसलिए हम प्रान्त के लाट सर मालकम हेली महोदय से बाअदब कहते हैं कि पिण्डारी-यात्रा को चलने से पूर्व एक बार और सोच लें; खूब समझ लें कि इस समय ऐसी यात्रा करना जनता को छेड़ना तो नहीं होगा ? भारत में साइमन कमीशन आया और भारत जाग उठा। सम्भव है कि लाट महोदय की पिण्डारी-

यात्रा हमारे कूर्मांचल को भी जगा दे। इस दृष्टि से लाट महोदय आइये और कूर्मांचल को जगाइये।" इस लेख का लाट साहब पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपनी पिण्डारी-यात्रा स्थगित कर दी।

'पस्त हिम्मत सरकार'— ('स्वाधीन प्रजा', ७ मई, १६३०)

"चार ही दिन में इसको क्या हो गया? इस सरकार को क्या हो गया? उसका अभिमान कहाँ गया? उसके कानून कहाँ उड़ गये? उसकी कौंसिलें कहाँ छू हुईं? बड़ी धीर और गम्भीर नौकरशाही! आज तू क्यों अधीर और बेचैन है? मुँह पीला सा है, चाल ढीली सी है—देहली के दरबार में या शिमले के शिखर में आज रौनक क्यों नहीं है? नैनीताल नगर की नौबत क्यों बन्द हुई? पेशावर के पठान क्यों रुष्ट हुए? मद्रास में गोली क्यों चली? बंगाल में काला कानून क्यों लगा? चटगाँव में चटपट क्यों बगावत हो गयी? सारे भारत में महात्मा गान्धी ने नमक-कानून का फुटबाल कैसे खेला? नौकरशाही! बतला, आज देश की सब खबरें हमें क्यों नहीं देती? सेंसर क्यों बैठकर चूहे के समान समाचार कुतर-कुतर कर भेज रहा है? विलायत को सब खबरें क्यों नहीं भेजती है? और इन सब बातों के बाद तूने भारत के समाचार-पत्रों पर यह गला-घोंट कानून क्यों लगा डाला? क्या तेरी सेना, पुलिस, तोप, बन्दूक, लाठियाँ सब बेकार हो गयीं जो तूने समाचार-पत्रों पर पीछे से वार किया? जान गये, सब समाचार-पत्र तेरे विरुद्ध होंगे—एक भी तेरे पक्ष में नहीं होगा, इसलिए तूने सेंसर बैठा दिया। समझ गये, सत्याग्रह की गोली ठीक तेरे हृदय पर बैठी है—इसलिए उस सत्याग्रह के प्रचार से डर कर समाचार-पत्रों पर गैर कानूनी कानून लगाकर अपनी और भी फजीहत की है। अभी तो सत्याग्रह की भूमिका मात्र हुई है—उस पर ऐसी घबराहट! इसका क्या अर्थ है? महात्मा का सत्याग्रह सफल हुआ है। नौकरशाही के सामने पराजय नाच रही है। देशव्यापी आन्दोलन ने उसकी स्थिति में घोर बाधा डाली है। वह 'पस्त हिम्मत' हो गयी है। वह जान रही है कि सत्याग्रह के कारण उसके नीचे की धरती निकली जा रही है; भूकम्प-सा प्रतीत होता है; तूफान जैसा लग रहा है; ज्वालामुखी जैसी फूट रही है। भारत को गान्धी ने महीने दो महीने में विकराल रूप का बना डाला। सैकड़ों वर्षों से जिस गद्दी में बेरोक-टोक सल्तनत के मजे लूटे, वह गद्दी खिसकी जाती है। किसान सलाम करना तो दूर रहा, गुजरात में पास फटकने नहीं आते; माडरेट भी दुरदरा रहे हैं; पटेल पर भरोसा था वह भी लात मार कर भागा—भगवान! शान्तिमय सत्याग्रह!! इसे तो गड़बड़ ढाना है—तोप, तलवार, तमञ्चे—उसके सामने क्या कर सकेंगे? नौकरशाही

छटपटा कर शिमले में बैठे-बैठे यह सोच कर झल्ला रही है। निराशा, निर्बलता और निपट मूर्खता ने बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। प्रेसों को हुक्म होता है—सत्याग्रह का प्रचार करोगे तो जमानत लेंगे; लोगों को सरकारी नौकरी छोड़ने को कहोगे तो गला घोंट देंगे—यहाँ तक कि समाचार पत्रों से जमानत लेकर जमानत और प्रेस दोनों जब्त करने का एक नया बेसिर पैर का स्वेच्छाचारी कानून गढ़ डाला। तुरन्त ही देहली के प्रमुख अंग्रेजी दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान टाइम्स' से ५०००) की जमानत माँगी गयी। अर्जुन, तेज, मिलाप आदि देहली के पत्रों से भी जमानतें माँगी गयीं और सबने अखबार बन्द कर दिये पर जमानत नहीं दी। उस गला-घोंट कानून का देश भर में व्यवहार अवश्य होगा। नौकरशाही इतना घबरा गयी है कि जो न करे वह कम है। लार्ड इर्विन को भलामानस बतलाते थे—मजा यह है कि उनके हाथ से नौकरशाही दमन की पराकाष्ठा पर पहुँचना चाहती है। प्रेस की स्वतन्त्रता स्वतन्त्र देशों में मान्य है, नौकरशाही ने उसे भारत में कब से छीन लिया था, प्रेस एक्ट का भूत मुद्दत तक भारत में विराजमान रहा पर कुछ वर्ष हुए वह मनसूख कर दिया गया था। सोचा था, अब प्रेस की स्वाधीनता पर वार न होगा पर गुलाम देश में असम्भव सम्भव होता है। आज अपने बावलेपन में नौकरशाही ने उस प्रेस एक्ट को पहले से भी भयंकर रूप में फिर जिलाया है। इससे देश को पता चलेगा कि नौकरशाही अब तक आन्दोलन को हँसी में उड़ाती थी, अब आटे-दाल का भाव ज्ञात हो गया है। आन्दोलन से छक्के छूट गये हैं इसलिए आँख बन्द करके मनमानी कर रही है। मरता क्या न करता—नौकरशाही ने विनाश का रास्ता लिया है और सत्याग्रह द्वारा उसका विनाश होगा। परमात्मा वह दिन शीघ्र लाये।"

उपर्युक्त दोनों लेखों से सरकार चिढ़ गयी और 'स्वाधीन प्रजा' के अठारह अंक ही प्रकाशित हो पाये थे कि प्रेस आर्डिनेंस के आदेशानुसार 'स्वाधीन प्रजा' से छः हजार रु० की जमानत माँगी गयी। जमानत देना जोशी जी एवं स्वाधीन प्रजा के स्वाभिमान के खिलाफ था, अतः उन्नीसवाँ अंक आधा ही छोड़कर प्रेस पर ताला डाल दिया गया। इसके पश्चात् जोशी जी ने मजबूर होकर प्रेस बेच दिया।

राष्ट्रीय झण्डे से अगाध प्रेम

मोहन जोशी को राष्ट्रीय झण्डे से अत्यधिक प्रेम था। सन् १९२२ ई० में जोशी जी बागेश्वर के मेले में राष्ट्रीय ध्वज को हाथ में लेकर डाकबँगले पर धावा बोलने गये थे। सन् १९२३ई० में भिक्यासैन के मेले में गिरफ्तार होते समय उनके हाथ में तिरंगा झण्डा था। देवीधुरा में राष्ट्रीय झण्डे को हाथ में लेकर 'मैचोल'

पर चढ़ाई की थी। सन् १६३० ई० में अल्मोड़ा में झण्डा-सत्याग्रह हुआ जिसमें मोहन जोशी पर डण्डों से अन्धाधुन्ध प्रहार हुआ और फिर किसी सख्त चीज से मोहन जोशी की रीढ़ की हड्डी पर तीव्र प्रहार हुआ। मोहन जोशी गिर पड़े, लेकिन वह महान् देशभक्त पुनः उठ खड़ा हुआ। इसके पश्चात् एक डण्डा उनके सिर पर मारा गया और वे मूच्छित होकर गिर पड़े तथा अस्पताल पहुँचा दिये गए। मोहन जोशी के साथ शान्तिलाल त्रिवेदी भी घायल हुए थे। दोनों ने घायल होते हुए भी अस्पताल से जिला-परिषद् के अध्यक्ष को चेतावनी दी कि यदि "तारीख २७ जून तक म्यूनिसिपल बोर्ड के दफ्तर पर राष्ट्रीय ध्वज नहीं फहराया गया तो हम दोनों घायल होते हुए भी डाण्डी में जाकर सत्याग्रह करके झण्डा फहरा देंगे।" राष्ट्रीय ध्वज से जोशी जी को इतना प्रेम हो गया था कि झण्डा हाथ में लेकर वह अक्सर भावावेश में गाया करते थे—"इसकी शान न जाने पाये, चाहे जान भले ही जाये।" वे राष्ट्रीय ध्वज का अपमान नहीं देख सकते थे। राष्ट्रीय ध्वज के अपमान को देखकर उनको इस बात से घृणा हो जाती थी कि वे पराधीन भारत में पैदा हुए हैं। राष्ट्रीय ध्वज के अपमान के समय उन्होंने कहा था, "शर्म है, मेरा जन्म हिन्दुस्तान में हुआ, जहाँ राष्ट्रीय ध्वज का अपमान होता है।"

'स्वाधीन प्रजा' के बन्द हो जाने पर जोशी जी ने अपना पूरा समय काँग्रेस के रचनात्मक कार्यों में लगाया, जिसमें ऊन की कताई-बुनाई, खद्दर-प्रचार, काँग्रेस सदस्यों की भर्ती, अछूतोद्धार, ग्रामोद्योग, कतुवा दंगल, खद्दर की प्रदर्शनियाँ आदि कार्यक्रम थे। वे जिला काँग्रेस संगठन के प्राण थे। मोहन जोशी ने हमेशा निस्स्वार्थ भाव से शूद्रों से प्रेम किया और अपने पत्र 'स्वाधीन प्रजा' के माध्यम से अछूतों का अच्छा नेतृत्व किया। सन् १६३२ ई० में जोशी जी ने एक बड़ा जुलूस अल्मोड़ा में निकाला। उस दिन उन्होंने एक भंगी को नहला एवं स्वच्छ वस्त्र पहना कर एक डाण्डी में झाड़ू-टोकरी सहित चढ़ाकर बाजार में जुलूस निकाला। उस डाण्डी को अल्मोड़ा के उच्च घराने के नवयुवकों ने अपने कन्धे पर उठाया। महिलाओं ने उस भंगी के बालक पर छतों से फूल बरसाये। जोशी जी के प्रभाव का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है कि किस प्रकार अल्मोड़ा के उच्च घराने के लोग व महिलाएँ भंगी के बालक की पूजा करने को तत्पर हो गये।

जनवरी, १६३१ ई० में मोहन जोशी बागेश्वर के मेले में गये और वहाँ जाकर उन्होंने स्वराज्य भूमि पर अधिकार कर लिया। इस पर प्रशासन अधिकारी शुक्ला साहब जोशी जी से मिलना चाहते थे। जोशी जी ने क्रोधित होकर

कहा—"मैं आपसे नहीं मिल सकता। यदि सरकारी काम है तो मुझे सरकारी बल से बुला लो; अगर व्यक्तिगत है तो कहीं मेले में भेंट हो जायेगी।" इसी मेले में जोशी जी ने अंग्रेजों की दमन नीति पर प्रकाश डालते हुए अपनी निडरता और देशभक्ति प्रकट की; साथ ही यह उनके जनसाधारण में प्रभाव का भी परिचायक है। उन्होंने कहा—"मैंने डिप्टी कमिश्नर साहब को सूचित कर रखा है कि मैं सदा उनसे युद्ध करने को तैयार हूँ....साठ हजार आदमी जेल गये, कई गुने पीटे गये, मुझे जेल जाने का भय नहीं है। रोज-रोज गोली, डण्डों व गिरफ्तारी का समाचार सुनते-सुनते अब ऊब चुका हूँ। यदि मुझे गोली से उड़ा दें तो कोई दुःख नहीं; यदि देश के लिए यह देह काम में आ जाय तो दुःख नहीं—अहोभाग्य है! ....कूर्मांचल से छाँट-छाँट कर सपूत जेल भेज दिये गये। अंग्रेज बात से नहीं, काम से डरते हैं। मैं सरयू के तट पर विदेशों की बीमारियों में आग लगा दूँगा। क्या नौजवानों का खून ठण्डा हो गया है जो विदेशी वस्त्र नहीं छोड़ते? यदि इस दमन की निन्दा के प्रस्ताव का समर्थन करना है तो यहीं पर विदेशी वस्त्रों को उतार फेंको और स्वदेशी का सन्देश समस्त कूर्मांचल में फैला दो।" इस भाषण से जनता उत्तेजित हो उठी और उसने विदेशी वस्त्रों की होली जला दी। जोशी जी ने सूर्य और सरयू को साक्षी रखकर विदेशी वस्त्र न खरीदने व खद्दर के प्रचार की प्रतिज्ञा करवायी।

इसके पश्चात् सन् १९३२ ई० में जोशी जी बागेश्वर में फिर पकड़े गये। उन्हें छह माह की सजा व दो सौ रु० जुर्माना हुआ।

एक बार ईसाई धर्म के एक प्रचारक अमेरिका से भारत आये और उन्होंने मोहन जोशी को अपना अनुवादक नियुक्त करना चाहा। जब उनसे वेतन के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि वे तीस रुपया मासिक से अधिक नहीं लेंगे। उनका कहना था "जब मेरे सैकड़ों भाई भूखे मर रहे हों तो मैं ऐशो-आराम क्यों करूँ? मैं अपने दीन-भाइयों से मिलना चाहता हूँ और उनके साथ पीड़ित होना चाहता हूँ।"

सन् १९३० में अल्मोड़ा-झण्डा-सत्याग्रह में उनके सिर पर जो कातिलाना प्रहार हुआ उससे जोशी जी मानसिक रोग से ग्रस्त हो गये। सन् १९३२ ई० के पश्चात् उनकी मानसिक विक्षिप्तता और भी बढ़ गयी और बीसवीं शताब्दी की चौथी दशाब्दी में वे शारीरिक व मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ रहे। यदि उनसे कोई मिलने आता तो वे विचित्र प्रदर्शन कर अंग्रेजी सरकार को गाली देते थे और कहते थे "मुझे न किसी को दर्शन देना है और न ही किसी का दर्शन करना है।"

जब कभी धार्मिक चर्चा होती तो जोशी जी कहा करते थे, "हिन्दू धर्म सम्प्रदाय रहित है, किन्तु मैं मनुष्य की उन्नति में सम्प्रदायवाद को भी एक जरिया मानता हूँ।" जोशी जी बाद में कट्टर मिशन विरोधी हो गये थे। उनका कहना था, "इन परदेशी मिशनरियों ने मुझको बाईबिल के अक्षरों के द्वारा बिजली मारी है।"

मानसिक रोग से ग्रस्त रहते हुए ४ अक्टूबर, १९४० ई० को भारत माता के इस महान् पुत्र का देहावसान हो गया।

मोहन जोशी के परम मित्र श्री हरिकृष्ण त्रिवेदी ने उनकी मृत्यु पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा है, "जोशीजी व्याख्यान नहीं बल्कि हिमालय तुल्य अपने निष्कपट और विराट हृदय को विगलित कर स्वतन्त्रता की गंगा प्रवाहित करते थे। उनके भाषण का ढंग नाटकीय था और उसमें स्वाभाविकता थी। भाषण के समय जान पड़ता था कि बर्फ से ढके उस ज्वालामुखी के अन्दर कितना लावा था; कितनी लपटें थीं; कितने अग्नि-स्फुल्लिंग थे, जो कायरता और जड़ता को क्षार कर देते थे। मोहन हृदय में घर कर लेता था। उसकी राजनीति की पृष्ठभूमि गान्धी की राजनीति की पृष्ठभूमि की तरह बिल्कुल ठोस थी। वह आधारित थी मानवता पर और मानवता का अर्थ है—स्वतन्त्रता, समानता, सह-भ्रातृत्व। यही कारण था कि जोशी राजनैतिक अवसरवादी नहीं बना। उसने काँग्रेस की ओर से चुनाव लड़े, वोट माँगे, काँग्रेस कमेटियों का संगठन किया, खादी की प्रदर्शनियाँ करायीं, सभाएँ कीं, जुलूस निकाले; अपनी स्वार्थसिद्धि व नाम के लिए नहीं, बल्कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए। जोशी जी एक सच्चे कामरेड, ईमानदार समाजवादी की तरह रूखा-सूखा भोजन कर और फटे-हाल रहकर अपने सब काम आन, बान, शान तथा वीरोचित गौरव के साथ करते थे। उन्हें समाजवाद की सच्चाई से प्रेम था। गान्धीवाद की तरफ उनका झुकाव था। जोशी जी कहते थे, "अरे यार रोटी के महत्व को मैं कम नहीं करता, लेकिन तुम नहीं देखते कि जबकि हम केक और बिस्कुट खाकर भी रोते हैं, डोटियाल चने फाँक कर और चुल्लू भर ठण्डा पानी पीकर भी राग अलापता है, अतः सन्तोष के स्वान्तः सुखाय की फिलासफी ही सर्वश्रेष्ठ है।" जोशी जी जीवन को एकांगी नहीं, सम्पूर्ण रूप में देखना चाहते थे। वे राजनीति के प्रधान व्यक्ति एवं सामाजिक व्यक्ति थे। उन्हें हिमालय से प्रेम था। वे धाराप्रवाह बोलते व लिखते थे। उनकी लेखन शैली प्राणपूर्ण होती थी। उनमें कुशल पत्रकार, लेखक, चित्रकार एवं संगीतज्ञ के गुण विद्यमान थे। उनका यह गाना—'भारत जननि तेरी जय हो, विजय हो' आज भी कानों में गूँजता है। नेता चाहते हैं कि जनता उन्हें पूजे,

परन्तु मोहन चाहते थे जनता उनसे प्रेम करे। वे राजनीति को अर्थनीति पर अवलम्बित करते थे, रचनात्मक कार्यों का महत्व समझते थे। जिला-परिषद् के अध्यापकों एवं विद्यार्थियों के हाथ में तकवे देकर उन्होंने औद्योगिक क्रान्ति की। जिस समय यह गीत गाया जाता था—'कतुवा कातुला ईजू तेरी जैं-जैं बोल' उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो तकलियों से ऊन का सूत नहीं अपितु आजादी का सूत निकल रहा है।"

मोहन जोशी के सहयोगी शान्तिलाल त्रिवेदी ने उनके विषय में लिखा है, "देशभक्त मोहन जोशी का साधारण शरीर था, पर दिल में देशसेवा की आग भरी हुई थी। उनका ज्वलंत, ओजस्वी भाषण जो कि सच्चे निष्ठावान हृदय से भभकता था, जनता के दिल में भी देशसेवा की आग लगा देता था।" वे कहते थे कि वे सैनिक बनकर सब कुछ करने को तैयार हैं।

कुछ वर्ष पूर्व हरगोविन्द पन्त एवं शान्तिलाल त्रिवेदी ने महान् देशभक्त मोहन जोशी का जीवन परिचय लिखने का प्रयास किया था परन्तु दुर्भाग्यवश वह पुस्तक अभी तक प्रकाशित नहीं हो पायी। जोशी जी का जीवन-चरित्र लिखे जाने की खुशी में पं० जवाहरलाल नेहरू ने एक पत्र शान्तिलाल त्रिवेदी को लिखा जो अब भी उनके संग्रह में है—"मुझे खुशी है कि श्री मोहन जोशी का जीवन-चरित्र लिखा गया है। श्री मोहन जोशी हमारी आजादी की लड़ाई और असहयोग आन्दोलन में एक वीर सैनिक थे और उन्होंने सब कुछ उसके लिए त्याग दिया। अल्मोड़ा जिले में तो उनका बहुत असर था और सब लोग उनके लिए श्रद्धा-भक्ति रखते थे, लेकिन उनका असर खाली अल्मोड़ा जिले में ही नहीं बल्कि उत्तर प्रदेश भर में था। मैं आशा करता हूँ कि उनका जीवन-चरित्र पढ़कर आजकल के लोगों पर, विशेषकर नवजवानों पर असर होगा और उससे बहुत कुछ देश सेवा की बातें वे सीखेंगे।"

रामसिंह धौनी (१८९३–१९३० ई०)

"धौनी जी जैसे स्वार्थत्यागी, देशप्रेमी लोग कम देखे जाते हैं। कार्यक्षेत्र छोटा हो या बड़ा, वह व्यक्ति श्रेष्ठ है जो उसमें जनता के उत्थान के लिए निस्स्वार्थ काम करे। शोरगुल मचाने वाले, बड़े-बड़े भाषण देने वाले तथा अपना ढोल स्वयं पीटने वाले लोग बहुत होते हैं, परन्तु लगन व प्रेम के साथ, निर्धन होते हुए भी अपने हित से अधिक परहित का चिन्तन करने वाले व्यक्ति ही सच्चे देशभक्त कहलाने के अधिकारी होते हैं। इसी श्रेणी में श्री रामसिंह धौनी भी आते हैं।"

धौनी-वंश का मूल निवास-स्थान अल्मोड़ा जिले के परगना 'काली कुमाऊँ' में गुमदेश नामक पट्टी रही। कहा जाता है कि धौनी-वंश का मूलपुरुष 'गुमा धौनी' था, इसी कारण इस पट्टी का नाम गुमदेश पड़ा। काली कुमाऊँ में धौनी लोग प्रतिष्ठित क्षत्रियों में गिने जाते हैं। चन्द राजाओं के शासन काल में धौनी-वंश के कुछ परिवार गुमदेश से चलकर अल्मोड़ा शहर से अठारह मील दूर पनार नदी के किनारे 'बिनौला' नामक ग्राम में आ बसे। ग्राम बिनोला में ही हिम्मत-सिंह धौनी जैसे सच्चरित्र व्यक्ति ने जन्म लिया।

हिम्मतसिंह धौनी का बचपन काफी दुःखदायी रहा। हिम्मतसिंह धौनी शान्त स्वभाव के व्यक्ति थे। ब्राह्मणों एवं साधु सन्तों का आदर एवं सेवा करना उनका परम कर्तव्य था। भारतीय परम्परा में शील स्वभाव नारी का सर्वोच्च आभूषण है। इसी आभूषण से सुसज्जित हिम्मतसिंह की पत्नी मधुरभाषी, पतिव्रता, अतिथि-सत्कार के गुणों से देदीप्यमान थी। इसी दम्पति को वृद्धावस्था में रामसिंह धौनी जैसा पुत्ररत्न प्राप्त हुआ था।

रामसिंह धौनी का जन्म २४ फरवरी १८९३ ई० को जिला अल्मोड़ा के बिनौला (पट्टी तल्लासालम) ग्राम में एक साधारण कृषक परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम हिम्मतसिंह था। भारतीय परम्परा के अनुसार

रामसिंह के जन्म के समय कुल-पुरोहित ने कुण्डली बनायी तथा घोषणा की कि बालक (रामसिंह) कुलदीपक, भाग्यशाली, यशस्वी व वीर होगा। बचपन से ही रामसिंह शान्त स्वभाव व प्रेम-पुजारी थे। सन् १९०५ ई० में रामसिंह ने थुवासेमल विद्यालय से कक्षा दो की परीक्षा कुशाग्र बुद्धि होने के कारण प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् जैंती लोअर स्कूल में प्रवेश ले लिया। उस समय इस विद्यालय में साठ विद्यार्थी थे और अध्यापक केवल मोतीराम ही थे, अतः रामसिंह धौनी छोटी कक्षाओं के बच्चों को स्वयं पढ़ाकर गुरु की सहायता करते थे।

सन् १९०८ ई० में रामसिंह ने कक्षा चार की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की; फलस्वरूप उन्हें दो रु० मासिक छात्रवृत्ति मिलने लगी। ५ मई, १९०८ ई० को रामसिंह ने जूनियर हाईस्कूल की शिक्षा हेतु 'अल्मोड़ा टाउन स्कूल' में प्रवेश ले लिया। इसी बीच उनका विवाह भी हो गया। हिन्दी मिडिल स्कूल में भी रामसिंह प्रथम रहे और अब उन्हें पाँच रु० मासिक छात्र-वृत्ति मिलने लगी; साथ ही साथ एक घड़ी भी पुरस्कार स्वरूप मिली।

रामसिंह को अपनी मातृभूमि से अगाध स्नेह था। वे भारत माता को अधिक दिनों तक पराधीनता की बेड़ियों से जकड़ी हुई नहीं देख सकते थे। अतः हाईस्कूल में पढ़ते समय उन्होंने अपने सहपाठियों को एकत्रित कर 'छात्र सम्मेलन सभा' की स्थापना की। सम्मेलन के मुख्य विषय देशप्रेम, राष्ट्रभाषा हिन्दी की उन्नति होते थे। इसका प्रभाव यह हुआ कि रामसिंह के अधिकांश सहपाठी पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् देश सेवा में लग गये। सन् १९१४ ई० में रामसिंह की भेंट अमेरिका की यात्रा से वापिस आये स्वामी सत्यदेव से हुई और धौनी जी उनके द्वारा स्थापित 'शुद्ध-साहित्य-समिति' और 'समर स्कूल' के सदस्य बन गये।

हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर धौनी जी इलाहाबाद में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की सोचने लगे, किन्तु उनकी आर्थिक स्थिति इसके प्रतिकूल थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु धौनी जी की तीव्र अभिलाषा को देखकर कुछ सम्बन्धियों व विद्याप्रेमियों ने उन्हें आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। 'जहाँ चाह वहाँ राह' कहावत को चरितार्थ करते हुए रामसिंह इलाहाबाद में 'इर्विन क्रिश्चियन कॉलेज' में विद्याध्ययन करने लगे। वहाँ धौनी जी छात्रावास में रहते और सहपाठियों में विचार-गोष्ठियों का आयोजन कर देश सेवा एवं राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार करते थे। विद्यार्थी जीवन में ही वे एक सार्वजनिक कार्यकर्ता बन गये। अपने साथियों के सहयोग से उन्होंने बंगाली एवं बिहारी भाषा का अच्छा

ज्ञान प्राप्त कर लिया। राष्ट्रीय पुस्तकें जो ब्रिटिश शासन द्वारा गैरकानूनी एवं जब्त कर ली गयी थीं, धौनी जी उन्हें एकत्रित कर रात्रि को पढ़कर अपने साथियों को सुनाया करते थे। धौनी जी हमेशा हिन्दी भाषा एवं जयहिन्द शब्द का प्रयोग करते थे। उन्होंने हिन्दी के प्रसार के लिए विद्यार्थी सभा में 'हिन्दी साहित्य सभा' की स्थापना की। धौनी जी ने चार वर्ष तक इलाहाबाद में अध्ययन किया और इसी बीच उनकी माता का भी निधन हो गया। सन् १९१९ ई० में बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर वे घर लौटे। इस समय उन्हें तहसीलदार का पद मिल रहा था, किन्तु धौनी जी ने उसे अस्वीकृत कर दिया। वृद्धावस्था में प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसका पुत्र उसका पालन-पोषण करे। धौनीजी के नौकरी न करने के दृढ़ संकल्प ने अभिभावकों की आशाओं पर पानी फेर दिया, लेकिन महापुरुष समस्त राष्ट्रवासियों को अपने परिवार का सदस्य एवं राष्ट्र को अपना परिवार समझकर कार्य करता है। प्रत्येक महान् व्यक्ति अपने जीवन में कुछ आदर्शों को आधार मानकर ही आगे बढ़ता है। धौनी जी ने अपने जीवन के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये थे––

(१) सबके प्रति प्रेम, लिवास में सादगी, समय का सदुपयोग, पढ़ने-लिखने में उत्साह, गुरुसेवा, महापुरुषों के कार्यों से प्रेरणा एवं बड़ों का आदर करना।

(२) देश की दशा का ज्ञान व उनके सुधारों के उपायों की खोज।

(३) देश में ऐसे नवयुवकों को तैयार करना जो देश की भलाई में ही जीवन लगायें।

(४) हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना।

(५) शिक्षा के माध्यम से देश को जागृत करना।

धौनी जी राजस्थान की वीरभूमि से अत्यधिक प्रभावित थे, अतः वहीं चले गये। कुछ दिन भ्रमण करने के पश्चात् बीकानेर राजा के सूरतगढ़ स्कूल में अस्सी रुपये मासिक वेतन पर एक वर्ष तक प्रधानाध्यापक रहे। वहाँ देशप्रेम और राष्ट्रीय भावनाओं का व्यापक प्रचार कर जयपुर राज्य के फतेहपुर में 'रामचन्द्र नेवटिया हाईस्कूल' में सहायक अध्यापक एवं हेडमास्टर रहे। कुछ समय पश्चात् इसी विद्यालय में प्रधानाध्यापक हो गये। उस समय फतेहपुर में राष्ट्रीय जागृति का कोई चिह्न नजर नहीं आता था, किन्तु रामसिंह धौनी ने राष्ट्रभक्ति के वास्तविक स्वरूप को वहाँ के निवासियों के सम्मुख प्रस्तुत किया। धौनी जी ने १९२१ ई० में फतेहपुर में 'साहित्य-समिति' की स्थापना की। इस समिति

का पाक्षिक अधिवेशन होता था, जिसमें लोग उत्साह से अपनी-अपनी रचनाएँ सुनाया करते थे। धौनी जी स्वयं कवि और लेखक दोनों थे, परन्तु पद्य की अपेक्षा गद्य पर उनका विशेष अधिकार था। 'साहित्य-समिति' का मुख्य पत्र 'बन्धु' था। धौनी जी के हृदय के भाव इसमें निकला करते थे। फतेहपुर में और उसके निकटवर्ती शहरों में उस समय यही एक पत्र था और साहित्यिक क्षेत्र में रुचि रखने वाले सज्जनों में इसका अच्छा प्रचार था। इसे जयपुर सरकार द्वारा बन्द किया गया था।

सन् १९२२ में फतेहपुर में रामसिंह धौनी काँग्रेस संगठन स्थापित करना चाहते थे, लेकिन रियासत के हस्तक्षेप से यह कार्य सम्भव न हो सका। भला यह देशप्रेमी युवक खाली कैसे बैठ सकता था, अतः उन्होंने 'युवक सभा' के नाम से समाज का संगठन प्रारम्भ किया। 'युवक सभा' की बैठक प्रत्येक रविवार को होती थी और इसके सदस्य जनसाधारण में सुधार कार्यों का प्रचार करते थे। कुछ समय पश्चात् धौनी जी ने छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए फतेहपुर में 'छात्रसभा' स्थापित की। धौनी जी का उद्देश्य अध्यापन के माध्यम से सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार एवं देशप्रेम जागृत करना था। जब फतेहपुर में यह काम 'युवक सभा' एवं 'छात्र सभा' से होने लगा, तो धौनी जी ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया और सन् १९२२ ई० में बजांग राज्य में चले गये। वहाँ भी राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने लगे और राजकुमारों को शिक्षा देकर हिन्दी प्रेमी बनाया। दरबार से उन्हें एक तलवार भेंट स्वरूप प्राप्त हुई, जो अभी भी उनके घर में सुरक्षित है। धौनी जी को पुस्तक व अखबार पढ़ने का बेहद शौक था व जलसों में भाग लेना उनकी आदत बन गयी थी।

बीकानेर, नागपुर, बजांग आदि रियासतों में शिक्षा, देशप्रेम एवं देशसेवा का संगठन मजबूत कर धौनी जी का ध्यान अपने क्षेत्र सालम व जिला अल्मोड़ा की ओर केन्द्रित हुआ, अतः वे १९२२ ई० में बजांग छोड़कर सालम आ गये। धौनी जी गाँवों में जागृति उत्पन्न करना चाहते थे। जिला अल्मोड़ा में अपने साथियों—बद्रीदत्त पाण्डे, मोहन जोशी, हरगोविन्द पन्त, गोविन्दबल्लभ पन्त आदि की सहायता से वे काँग्रेस संगठन को मजबूत करने लगे। इसमें उन्होंने काफी सफलता अर्जित की। सारे जिले में घूम-घूम कर धौनी जी ने शिक्षा का प्रचार किया एवं पाठशालाएँ खुलवायीं। प्रत्येक क्षेत्र में देशसेवकों को संगठित कर ऊन की कताई-बुनाई की ओर जनता की रुचि बढ़ाई और ऊन के अनेक केन्द्र खुलवाये।

सन् १९२४ ई० में धौनी जी ने टनकपुर के गाँवों में जाकर जनता की परे-

शानी का अनुभव किया और सरकार की लापरवाही और चराई दूनी करने का विरोध किया।

जिला-परिषद् के चुनाव में धौनी जी दो बार सालम की ओर से सदस्य निर्वाचित हुए और जिला काँग्रेस कमेटी के मंत्री भी रहे। जिला-परिषद् में हिन्दी, कताई-बुनाई, निशुल्क शिक्षा, राष्ट्रीय गीतों के कार्यक्रम को स्वीकृत करवाने में उन्होंने प्रमुख भाग लिया। नवम्बर १९२५ ई० में मोहन जोशी के स्थान पर रामसिंह धौनी ने 'शक्ति' के सम्पादक के पद का कार्यभार सँभाला, उस समय 'शक्ति' का कार्यालय सुव्यवस्थित नहीं था। धौनी जी द्वारा अव्यवस्थित स्थिति में शक्ति का सम्पादन सँभालते समय गोविन्दबल्लभ पन्त ने उन्हें एक पत्र भेजा, जिसमें धौनी जी की कार्यकुशलता पर प्रकाश डालते हुए पन्त जी ने लिखा—"मुझे हर्ष है कि आपने 'शक्ति' पत्रिका की सम्पादकी स्वीकार कर ली है। आपकी सेवा प्राप्त कर लेने पर मैं शक्ति प्रेस को मुबारकबाद देता हूँ। मुझे पूर्णतः विदित है कि इसमें पर्याप्त सामान की कमी है और कार्यालय पूर्णरूप से सुसज्जित नहीं है। आप नाजुक हालत में पड़े हैं पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अपना कार्य सफलतापूर्वक निबाहेंगे। यदि कोई व्यक्ति अपने सिद्धान्तों का पालन करता है तो तमाम जनता के मामलों में सच्चाई, उदारता और बिना अपने निजी विचारों और मामलों से व्यक्त होकर करता है तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह तमाम चट्टानों व रोड़ों को साफ पार कर आगे बढ़ जाता है। मुझे मालूम है कि आप में ये सब गुण बहुत बड़ी मात्रा में विद्यमान हैं और आपके हाथ में देश की भलाइयाँ सुरक्षित हैं।"

धौनी जी ने अपने सम्पादकीय लेखों में हिन्दू-मुसलमान-एकता, अछूतों को ऊपर उठाने, राष्ट्रीय संगठन, घरेलू उद्योग-धन्धे, राष्ट्रभाषा हिन्दी, निशुल्क शिक्षा, कौंसिल, जिला बोर्ड एवं म्युनिसिपल बोर्ड का जनसुधार करने की ओर जनता व सरकार का ध्यान आकर्षित किया। अथक परिश्रम के फलस्वरूप धौनी जी का स्वास्थ्य खराब होने लगा, अतः उन्होंने सम्पादक पद से त्याग पत्र दे दिया और उसी समय रामसिंह धौनी 'जिला अध्यापक समिति' के स्थायी सभापति चुने गये। धौनी जी की अध्यक्षता में सन् १९२६ ई० में अल्मोड़ा व काँडा में उपर्युक्त समिति के अधिवेशन हुए। अधिवेशनों में धौनी जी ने अध्यापकों से संगठित होकर देश में व्याप्त अशिक्षा को मिटाने और देश के नवयुवकों को राष्ट्रप्रेमी बनाने पर जोर दिया। इसके बाद धौनी जी जिला-परिषद् के अध्यक्ष रहे। इस अवधि में उन्होंने जिले में शिक्षा, कृषि, पशुपालन, जनसाधारण में खादी का प्रचार, रात्रि पाठशालाओं पर जोर दिया तथा विद्यालयों में

राष्ट्रीय नेता तिलक और गान्धी के चित्र लगवाये। धौनी जी स्वयं खादी के ही वस्त्र पहनते थे।

धौनी जी अल्मोड़ा रहने पर भी जयपुर, बीकानेर और बजांग को नहीं भूले। वहाँ रामसिंह राष्ट्रीय भावनाओं के बीच बो आये थे। समय मिलने पर उन पर उगे वृक्षों को देखकर उन्हें सींच आते थे। दिन-रात मातृभूमि की सेवा करने के फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य अत्यधिक खराब हो गया, अतः वह अब अपने घर में ही रहने लगे। समाजसेवी एवं देशप्रेमी स्वास्थ्य के खराब होने या विषम परिस्थितियों के आने पर भी अपने मार्ग से विचलित नहीं होता। सालम में रहने पर भी धौनी जी ने एक सभा का आयोजन कर चौरवुरी में मिडिल स्कूल की स्थापना करवायी। सन् १९२८ ई० में सालम में एक अन्य जन सभा बुलवा कर ब्रिटिश शासन द्वारा लगान बढ़ाने हेतु होने वाले बन्दोवस्त पर तीव्र विरोध प्रकट किया गया। इस सभा में निम्न प्रस्ताव पास हुए—

(१) तल्लासालम की यह सभा बन्दोवस्त का घोर विरोध करती है।

(२) यदि सरकार बन्दोवस्त करना ही चाहता है तो बन्दोवस्त का कुल खर्च जनता पर न थोप कर स्वयं वहन करे।

(३) बिना प्रजा की सम्मति के किसी प्रकार का बन्दोवस्त न किया जाय।

सालम के गाँव-गाँव में बन्दोवस्त सभाएँ स्थापित की गईं, जो समय पर अपनी माँग रखकर सरकार की गलतियों का विरोध कर सकें।

७ नवम्बर १९२८ को बम्बई से केशवदत्त नेवटिया का पत्र धौनीजी के नाम आया कि वे पत्र पाते ही बम्बई आ जायें। उनका नेवटिया परिवार से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध था कि शरीर की परवाह न करते हुए वे बम्बई चले गये। बम्बई में उन्होंने कूर्मांचलवासियों का एक संगठन कर उनमें जागृति उत्पन्न की। सन् १९२९ ई० में धौनी जी ने बम्बई में पर्वतियों से काफी धन एकत्र कर अल्मोड़ा के राष्ट्रीय आन्दोलन को सफलतापूर्वक चलाने के लिए भेजा। वहाँ से वे अल्मोड़ा को अंग्रेजी दैनिक अखबार एवं टाइप किये हुए बुलेटिन डाक द्वारा भेजते थे।

धौनी जी बम्बई में भी अध्यापक का कार्य करने लगे, क्योंकि उनका उद्देश्य था कि जब तक शिक्षा के द्वारा देश को जागृत न किया जाय, तब तक स्वराज्य मिलना, न मिलने के बराबर है। आजादी के पश्चात् देशवासियों पर देश की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने व प्रगति के पथ पर अग्रसर करने का भार आयेगा। यदि उस वक्त सुशिक्षित व सुसंगठित होकर देश के अपनत्व को निभाने

की योग्यता उनमें नहीं होगी तो रामराज्य कायम न हो सकेगा। इसके पश्चात् बम्बई में वह राजपूताना शिक्षा समिति के मंत्री एवं 'अखिल भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल जातीय कोष' के मंत्री भी रहे।

सन् १९३० ई० में बम्बई में चेचक का प्रकोप हुआ और अनेक व्यक्ति मौत के शिकार हो गये। धौनी जी एवं उनसे प्रभावित नेवटिया परिवार के सदस्य रोगियों की सेवा करते और इस कार्य में सरकार को भी सहायता देते थे। दिन भर रोगियों के सेवाकार्य में व्यस्त रहने के कारण धौनी जी भी चेचक के शिकार हुए, किन्तु सौभाग्यवश काफी इलाज के पश्चात् ठीक हो गये।

यद्यपि धौनी जी का तन तो बम्बई में था तथापि मन अपने जिले, गाँव में रहता था। वे बम्बई से अपने जिलावासियों, सालमवासियों और चौरपुरी विद्यालय के अध्यापकों एवं विद्यार्थियों को समय-समय पर अपनी राय देते रहते थे।

सन् १९३० ई० में जब देशव्यापी आन्दोलन ने अपना उग्र रूप प्रदर्शित किया तो धौनी जी अपने जिले में आकर आन्दोलन को तीव्र गति प्रदान करना चाहते थे। वे अल्मोड़ा को राष्ट्रीय आन्दोलन के क्षेत्र में प्रथम श्रेणी के जिलों में देखना चाहते थे। अल्मोड़ा में आन्दोलन का नेतृत्व करने के लिए हरगोविन्द पन्त, विक्टर मोहन जोशी, शान्तिलाल त्रिवेदी, हर्षदेव ओली, बद्रीदत्त पाण्डे, मोहनसिंह मेहता आदि राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने उन्हें अल्मोड़ा बुलाना चाहा, लेकिन स्वास्थ्य की गम्भीरता के कारण वे न आ सके।

सन् १९३० ई० के आन्दोलन में सालम का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसकी सूचना जब धौनी जी को मिली, तो उनके हर्ष की सीमा न रही।

सन् १९३० ई० में चेचक के पश्चात् धौनी जी को टाइफायड हुआ; फलस्वरूप १२ नवम्बर १९३० ई० को भारत माता का यह सच्चा सपूत हमेशा-हमेशा के लिए इस नैसर्गिक संसार से विदा हो गया।

धौनी जी के सतत् प्रयत्नों से बनी संस्थाएँ आजकल प्रगति के उच्च शिखर पर हैं। जैंती का मिडिल स्कूल अब इण्टर कॉलेज तथा जिला-परिषद् का औषधालय उच्चस्तरीय राजकीय चिकित्सालय बन गया है। बम्बई में कूर्मांचलवासियों का जो संगठन उन्होंने स्थापित किया था, उसका नाम अब 'हिमालय पर्वतीय संघ बम्बई' है, जो उनके बम्बई प्रवास के कार्यकाल की यादगार है। जयहिन्द को धौनी जी जीवन का मूलमन्त्र मानते थे। धौनी जी एक महान् देशभक्त थे, जिन्हें राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए व्यक्तिगत हानि स्वीकार

थी। इन्द्रसिंह नयाल ने उनके विषय में लिखा है, "पहाड़ जैसे गरीब प्रदेश में रचनात्मक कार्य करने की शुरुआत श्री रामसिंह धौनी ने अपने निजी स्वार्थों का बलिदान देकर की।"

धौनीजी स्वार्थरहित. सीधे-सादे, सरल व साधु प्रकृति के देशसेवक थे। उनका स्वार्थ त्याग, देशप्रेम, देशसेवा विमल व पवित्र थी। गढ़वालियों और कुमाऊँनियों के परस्पर वैमनस्य को दूर करना और विवाहादि द्वारा उन्हें सामाजिक प्रेम बन्धन में बाँधना उनका एक मुख्य उद्देश्य था।

भारतवर्ष के स्वतन्त्रता-संग्राम में रामसिंह धौनी ने निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने फतेहपुर, बजांग, कुमाऊँ व बम्बई में जनसाधारण में जागृति पैदा की। माता-पिता द्वारा नौकरी करवाने की इच्छा पर पानी फेर कर उन्होंने समस्त देश को अपना परिवार समझने का आदर्श जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। धौनी जी की प्रेरणा के परिणामस्वरूप सालम में स्थापित विद्यालय शासन विरोधी शिक्षा के केन्द्र बन गये और स्वतन्त्रता-संग्राम में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा।

दुःख का विषय है कि इस महान् स्वतन्त्रता-सेनानी का नाम न तो उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित कुमाऊँ क्षेत्र के स्वतन्त्रता सेनानियों के जीवन परिचय से सम्बन्धित पुस्तक में है और न ही उनका जीवन-चरित्र कहीं उपलब्ध है।

रामसिंह धौनी की डायरी से उद्धृत इस कविता से उनकी राष्ट्र के प्रति भावनाएँ स्पष्ट हो जाती हैं—

"भारत ! मैं तुझको श्रद्धा से प्रणाम करता हूँ,
अपने हृदय के भावों को चरणों में धरता हूँ।
तू ही तीस कोटि भारतीयों की माता है,
प्राचीन यश जिसका वेदव्यास गाता है।
तू धन्य है, तू धन्य है, तू धन्य है, माता॥
वह नीच से भी नीच है जो तुझको भुलाता,
है वह उच्च, सबसे श्रेष्ठ, जो सेवा तेरी करता।
सागर ने तेरे चरणों में माथा नवाया,
अरु शुभ्र हिमालय ने मुकुट को सजाया है।
चाहते हैं ईश अब भारतीयों की ध्वजा सजे,
अरु सभ्य जातियों में इसकी दुन्दुभी बजे।

हरगिज किसी से मत डरो, भाइयो बढ़ चलो,
अरु देश हित के कार्य में सबसे गले मिलो।
जाड़ों का दुःख उठाना बेड़ियाँ लगी भी देखीं,
सहते हैं हम सब कुछ हिन्दोस्तान की खातिर।
चूतड़ में बेंत जबकि जालिम लगाने आये,
बोला मैं हाँ लगाओ हिन्दोस्तान की खातिर।
सौ बार अगर जनम हो, तो भी यही धरम हो,
मारेंगे, मर मिटेंगे, हिन्दोस्ताँ की खातिर।

भारतरत्न गोविन्दबल्लभ पन्त (१८८७-१९६१ ई०)

"फिरोज मेहता हिमालय के समान विशाल हैं,
लोकमान्य तिलक समुद्र के समान गम्भीर हैं,
गोखले गंगा के समान सरल हैं; पर पण्डित
गोविन्दबल्लभ पन्त के व्यक्तित्व में इन
तीनों गुणों का समावेश एक साथ मिलता है।"

गोविन्दबल्लभ पन्त का जन्म सन् १८८७ में खूँट (जिला अल्मोड़ा) नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम मनोरथ पन्त था। गोविन्दबल्लभ पन्त की प्रारम्भिक शिक्षा अपने नाना रामजे के प्रमुख सहायक सदर अमीन बद्रीदत्त जोशी के घर अल्मोड़ा शहर में हुई। सन् १८९७ में उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा हेतु 'रामजे कॉलेज अल्मोड़ा' में भर्ती कर दिया गया। उन्होंने वहाँ से लोअर मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। वे बचपन से ही गणित और अंग्रेजी विषयों में मेधावी छात्र थे।

अल्मोड़ा राजनैतिक दृष्टि से कुमाऊँ कमिश्नरी में सर्वाधिक गर्म रहा है। वहाँ के राजनैतिक वातावरण का किशोर गोविन्दबल्लभ पन्त पर व्यापक प्रभाव पड़ा। सन् १९०३ में उन्होंने हाईस्कूल की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में पास की। हाईस्कूल में पढ़ते हुए उन्होंने अल्मोड़ा में 'हैप्पी क्लब' नामक गुप्त संस्था की स्थापना की। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य नवयुवकों में राजनैतिक चेतना का संचार करना था। इसकी सदस्य संख्या सीमित रखी गई और इसकी अधिकांश बैठकें नगर से बाहर एकान्त स्थान पर होती थीं।

सन् १९०५ में इण्टरमीडिएट की परीक्षा पास करने के पश्चात् गोविन्द बल्लभ पन्त उच्च शिक्षा हेतु 'म्यौर सैण्ट्रल कॉलेज' इलाहाबाद में चले गये। अपने मधुर तथा शान्त स्वभाव के कारण वे वहाँ भी अपने सहपाठियों में लोकप्रिय हो गये। इलाहाबाद में अध्ययन करते हुए गोविन्दबल्लभ पन्त देश के अनेक महान् नेताओं के सम्पर्क में आये। सन् १९०५ में बनारस में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का अधिवेशन हुआ। गोविन्दबल्लभ पन्त और हरगोविन्द पन्त ने एक स्वयंसेवक के रूप में उसमें भाग लिया; फलस्वरूप इन दोनों को बी० ए० की परीक्षा में बैठने से रोक दिया गया, लेकिन मदनमोहन मालवीय तथा सर तेज
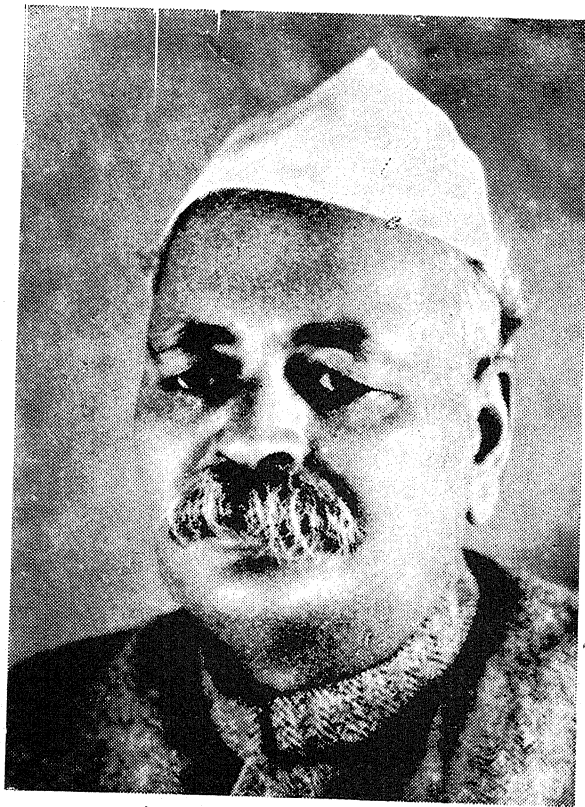
नैनीताल नमक-सत्याग्रह के जनक

भारतरत्न गोविन्दबल्लभ पन्त

बहादुर सप्रू के प्रयत्नों से उन पर से यह प्रतिबन्ध उठा लिया गया और उन्हें परीक्षा में बैठने की अनुमति मिल गई। सन् १९०७ में बी० ए० की परीक्षा पास कर गोविन्दबल्लभ पन्त ने एल-एल० बी० की कक्षा में प्रवेश किया।

सन् १९०९ में कानून की परीक्षा पास कर पन्त जी अल्मोड़ा आये और वहाँ वकालत प्रारम्भ कर दी, लेकिन एक वर्ष के पश्चात् ही वे अल्मोड़ा छोड़ कर काशीपुर चले गये और वहाँ स्थायी रूप से वकालत करने लगे। पन्त जी सदैव खादी-वस्त्रों का प्रयोग करते थे। एक दिन अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने टोपी पहनकर कोर्ट में उनके प्रवेश पर आपत्ति प्रकट की। इस पर पन्त जी ने बड़ी निर्भीकता से मजिस्ट्रेट को उत्तर दिया, "मैं कोर्ट से बाहर जा सकता हूँ, पर यह टोपी नहीं उतार सकता।" वे एक उच्च कोटि के प्रतिभासम्पन्न वकील थे, अतः धीरे-धीरे सर्वत्र उनके वकालत की धाक जम गई।

पन्त जी का वैवाहिक जीवन अत्यन्त दुःखी सिद्ध हुआ। उनका प्रथम विवाह किशोरावस्था में ही हो गया था। सन् १९०९ में बीमारी के कारण उनकी पत्नी और पुत्र का देहावसान हो गया। सन् १९१२ में उनका दूसरा विवाह अल्मोड़े से हुआ, किन्तु १९१४ में उनकी यह पत्नी भी स्वर्ग सिधार गई। सन् १९१६ में कई लोगों के काफी अनुरोध किए जाने पर काशीपुर से उनका तीसरा विवाह सम्पन्न हुआ। यद्यपि पन्त जी को परिवार की ओर से एक से एक बड़े आघात लगे, तथापि भारत माता का यह सच्चा सपूत देश-सेवा के मार्ग से विचलित नहीं हुआ। वकालत के साथ-साथ पन्त जी ने सामाजिक तथा राजनैतिक कार्यों में भी सक्रिय भाग लिया। सन् १९१४ में उन्होंने साहित्य-प्रचार एवं समाज-सुधार के उद्देश्य से काशीपुर में 'प्रेम-सभा' की स्थापना की। यह सभा काशी नागरी प्रचारिणी-सभा की शाखा के रूप में स्थापित की गई। प्रेम-सभा के स्वयंसेवकों ने काशीपुर तथा पर्वतीय क्षेत्र में समाज-सेवा के कार्यों में सक्रिय भाग लिया।

शिक्षा से ही मनुष्य में सभ्यता तथा संस्कृति का विकास होता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए सन् १९१४ में पन्त जी ने काशीपुर में 'उदयराज हिन्दू हाईस्कूल' की स्थापना की। वर्तमान समय में यह स्कूल इण्टर कॉलेज के रूप में परिवर्तित हो चुका है। अनेक आर्थिक और प्रशासनिक कठिनाइयों के बावजूद भी उन्होंने सन् १९२२ में काशीपुर में अनिवार्य तथा निशुल्क शिक्षा का आदर्श प्रस्तुत किया। सन् १९१६ में कुमाऊँ कमिश्नरी के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार-विमर्श के लिए नैनीताल नगर में 'कुमाऊँ-परिषद्' की स्थापना हुई, जिसमें पन्त जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

राष्ट्रीय आन्दोलन की अवधि में कुमाऊँ का समाज दो वर्गों में विभक्त हो गया था। प्रथम वर्ग में रायबहादुर और सरकार के समर्थक लोग आते थे। दूसरा वर्ग नवयुवकों का था, जो देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिये सदैव तैयार था। इन दोनों दलों में सामंजस्य स्थापित करना एक टेढ़ी खीर थी, लेकिन पन्त जी ने अपनी राजनैतिक दूरदर्शिता का परिचय देते हुए इन दोनों वर्गों (दलों) में सामंजस्य स्थापित किया; फलतः राष्ट्रीय आन्दोलनों में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आने पायी। सन् १९१६ तक पन्त जी कुमाऊँ के राजनैतिक आकाश में पूर्णतः छा गये।

पन्त जी रचनात्मक कार्यों में विश्वास करते थे, अतः उन्होंने सन् १९१८ में काशीपुर में एक खद्दर-आश्रम तथा विधवा-आश्रम खुलवाया। सन् १९१९ में गढ़वाल में भीषण अकाल पड़ा। पन्त जी ने वहाँ सस्ते गल्ले की दुकान खोलकर जनता को परेशानियों में पड़ने से बचाया।

सन् १९२० में सम्पूर्ण देश में असहयोग आन्दोलन की लहर फैल गई। पन्त जी असहयोग आन्दोलन के पक्के समर्थक थे। उनका कहना था कि असहयोग के द्वारा देश की उन्नति होगी और हम अपने पाँवों पर खड़े हो जायेंगे। इसी वर्ष वे नैनीताल जिला-परिषद् के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इस काल में उन्होंने देहाती इलाकों की शिक्षा तथा गृह उद्योगों के विकास पर जोर दिया।

पन्त जी काँग्रेस के एक सक्रिय कार्यकर्ता थे, अतः सन् १९१६ में वे अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के सदस्य चुने गये। सन् १९२३ में स्वराज्य पार्टी के टिकट पर नैनीताल जिले से संयुक्त प्रान्त की विधान-परिषद् के सदस्य निर्वाचित हुए और उन्हें प्रान्त में विरोधी दल का नेता भी चुना गया। सन् १९२७ में पन्त जी को संयुक्त प्रान्त की काँग्रेस कमेटी का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया।

सन् १९२८ में साइमन कमीशन भारत आया। सर्वत्र उसके बहिष्कार का कार्यक्रम बनाया गया। इस कमीशन के विरुद्ध कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए पन्त जी ने संयुक्त प्रान्त का तूफानी दौरा किया और स्थान-स्थान पर जन-सभाएँ आयोजित कर जनता से साइमन कमीशन का विरोध करने को कहा। अपने भाषणों में उन्होंने जनसाधारण को स्वराज्य का महत्व बताते हुए ब्रिटिश सरकार के झूठे आश्वासनों की निन्दा की। पन्त जी एक स्वतन्त्रता प्रिय व्यक्ति थे। उनका कहना था कि किसी राष्ट्र का स्वतन्त्रता का अधिकार एक अविभाज्य तथा अविच्छिन्न अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति को स्वराज्य पर अमल करने का पूर्ण अधिकार है। साइमन कमीशन के विरुद्ध लखनऊ में आयोजित प्रदर्शन का नेतृत्व पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा गोविन्दबल्लभ पन्त ने किया।

वहाँ घुड़सवार पुलिस ने प्रदर्शनकारियों को घोड़ों से रौंद डाला और नेता जवाहर लाल नेहरू पर निर्मम लाठी प्रहार किया गया। ऐसी स्थिति में नेहरू जी के प्राणों की रक्षा के लिए पन्त जी ने स्वयं अपनी जान जोखिम में डालने का जो अद्भुत साहस प्रदर्शित किया वह अनुकरणीय है। पन्त जी को पुलिस की लाठियों से घातक चोटें लगीं; फलस्वरूप वे आजीवन अपनी कमर सीधी नहीं कर सके और उनका शरीर काँपने लग गया था।

सन् १९२८ में पन्त जी पुनः नैनीताल जिला-परिषद् के अध्यक्ष चुने गये। उन्होंने वहाँ की प्रमुख समस्याओं को हल करने का पूरा प्रयत्न किया। इसी वर्ष उन्होंने कौंसिल के अधिवेशन में नायक-सुधार कानून पास करवाया, जिससे नायक जाति के लोगों में नई चेतना का संचार हुआ।

सन् १९३० में देश में गान्धी जी के नेतृत्व में नमक-सत्याग्रह चला। कुमाऊँ कमिश्नरी में नमक-सत्याग्रह का नेतृत्व गोविन्दबल्लभ पन्त ने किया। इसी कारण नैनीताल नगर नमक-सत्याग्रह में कुमाऊँ कमिश्नरी का केन्द्र रहा। नमक कानून के उल्लंघन में पन्त जी को छः माह की सजा हुई। सन् १९३२ में सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन्हें पुनः कारावास की सजा सहनी पड़ी। पन्त जी में सुधार योजनाओं को प्रस्तुत करने की असाधारण योग्यता थी, अतः उन्हें संयुक्त प्रान्त की काँग्रेस कमेटी के द्वारा नियुक्त कृषि-भूमि कमेटी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया और १९३१ में उन्होंने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जो पन्त कमेटी की रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रतिवेदन के आधार पर राज्य में भूमि-सुधारों की नींव पड़ी। सन् १९३१ में पन्त जी काँग्रेस कार्य समिति के सदस्य चुने गये तथा सन् १९३४ में अखिल भारतीय संसदीय बोर्ड के अध्यक्ष तथा केन्द्रीय विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुए और वहाँ उन्होंने काँग्रेस के उपनेता के रूप में उल्लेखनीय कार्य किया।

पन्त जी में एक समाज-सुधारक के सभी गुण विद्यमान थे। उन्हें समाज में व्याप्त छुआछूत की कुप्रथा से घृणा थी। अतः सन् १९३२ में उन्होंने अल्मोड़ा में 'कुमाऊँ समाज-सम्मेलन' आयोजित किया। यह सम्मेलन बद्रीदत्त जोशी एडवोकेट (राय बहादुर) के सभापतित्व में अल्मोड़ा के बद्रीश्वर मैदान में हुआ। इस सम्मेलन में कुमाऊँ कमिश्नरी के समाज में व्याप्त कठोर वर्ण-व्यवस्था पर कुठाराघात करते हुए शूद्रों की उत्पत्ति अन्य वर्णों के समान मानी गई और हरिजनों से बुराइयों को त्यागकर नैतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक उन्नति पर जोर देने के लिए कहा गया। तत्पश्चात् सवर्णों द्वारा हरिजनों की बस्तियों में जाकर

जल पीने का कार्यक्रम बनाया गया और हरिजनों के प्रवेश से वर्जित मन्दिर और नौलें उनके लिए खोल दिये गये।

सन् १९३७ में चुनाव हुए और पन्त जी कांग्रेस पार्टी के सदस्य के रूप में पुनः विजयी हुए। उन्हें संयुक्त प्रान्त की कांग्रेस पार्टी का नेता तथा मुख्यमंत्री चुना गया, लेकिन ब्रिटिश सरकार के अनावश्यक दबाव के कारण सन् १९३९ में काँग्रेस मंत्रि-मण्डलों ने इस्तीफे दे दिए। यद्यपि पन्त जी के इस मंत्रिमण्डल ने अल्पकाल तक ही शासन किया, तथापि उसने काश्तकारी कानून पारित कर और काकोरी काण्ड के अभियुक्तों को छुटकारा दिला कर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर दी। पन्त जी ने शिमला कॉंफ्रेंस तथा मिस्टर जिन्ना के साथ हुई वार्ता में भी महत्वपूर्ण भाग लेकर काफी ख्याति अर्जित की।

सन् १९४० में सम्पूर्ण भारतवर्ष में व्यक्तिगत सत्याग्रह की लहर दौड़ गई। पन्त जी को व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेने के कारण एक वर्ष की कैद की सजा मिली। ९ अगस्त, सन् १९४२ में उन्हें काँग्रेस कार्यकारिणी के सदस्यों के साथ बम्बई में गिरफ्तार कर लिया गया और ३१ मार्च, सन् १९४५ तक अहमदनगर के किले में नजरबन्द रखा गया। स्वतन्त्रता-संग्राम की अवधि में पन्त जी ने लग-भग सात वर्ष की कारावास की सजा पायी।

सन् १९४६ में संयुक्त प्रान्त की विधान सभा के चुनाव हुए। इस चुनाव में भी पन्त जी विजयी हुए और १९४६ से १९५४ तक निरन्तर उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री रहे। पन्त जी के इस शासनकाल की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी सन् १९५२ में जमींदारी उन्मूलन की विधिवत् घोषणा। इससे सदियों से उपेक्षित और शोषित किसानों तथा मजदूरों के लिए उज्ज्वल भविष्य के द्वार खुल गये। अपने शासनकाल में पन्त जी ने भूमि-सुधार, सिंचाई की व्यवस्था, सहकारी समितियों की स्थापना, मध्यम श्रेणी के उद्योगों को प्रोत्साहन, खादी-प्रचार को प्रोत्साहन, करघा उद्योग का विकास एवं लघु उद्योगों को प्रोत्साहन दिया। पन्त जी हिन्दी भाषा के प्रेमी थे। उन्होंने हिन्दी के प्रचार व प्रसार पर विशेष बल दिया।

महात्मा गान्धी पन्त की कूटनीतिज्ञता से काफी प्रभावित थे, अतः वे मौलाना आजाद के साथ वार्ता में उन्हें सदैव अपने साथ रखते थे। मि० जिन्ना भी पन्त जी से प्रभावित थे। उनकी बहुमुखी प्रतिभा को देखते हुए उन्हें 'संविधान-परिषद्' का सदस्य भी निर्वाचित किया गया था।

सन् १९५५ में पन्त जी भारत के गृह-मंत्री निर्वाचित हुए। इस पद पर उन्होंने १९६१ ई० तक कार्य किया। गृह मंत्रालय का दायित्व सँभालते ही पन्त जी को अनेक जटिल समस्याओं का समाधान करना पड़ा। देश में भाषा

तथा प्रदेश सम्बन्धी विवादों के कारण अशान्ति व्याप्त थी। नेफा का विद्रोही नेता फिजो सरकार के लिए परेशानियाँ उत्पन्न कर रहा था। गृह मंत्रालय उस पर नियंत्रण रखने में सर्वथा असमर्थ प्रतीत हो रहा था। प्रशासन में भी परिवर्तन की आवश्यकता थी। एक कुशल प्रशासक की भाँति अथक परिश्रम तथा अपनी राजनैतिक दूरदर्शिता का परिचय देते हुए पन्त जी ने अनेक समस्याओं का समाधान कर दिया। असम, केरल, कश्मीर जैसे जटिल विषयों पर सरकार की नीतियाँ स्पष्ट हो गई। राज्यों के सम्बन्ध में केन्द्र के दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। इन सभी नीतियों में गृह-मंत्री (गोविन्दबल्लभ पन्त) के विचारों की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती थी। सन् १९५८ में मौलाना आजाद की मृत्यु के पश्चात् पन्त जी ने काँग्रेस दल के उपनेता के पद का कार्यभार भी सँभाला।

केन्द्रीय विधान सभा में पन्त जी के योगदान पर बिहार के सुप्रसिद्ध पत्र 'योगी' ने अपने सम्पादकीय में लिखा—"असेम्बली में देश के जितने रत्न इस समय एकत्र हैं, उनमें पण्डित गोविन्दबल्लभ पन्त सबसे अधिक शोभायमान हैं। पन्त जी के भाषण जहाँ गाम्भीर्य तथा ज्ञान से परिपूर्ण होते हैं, वहाँ ओजस्विता से भी भरे होते हैं।"

केन्द्रीय असेम्बली के आंग्ल-भारतीय दल के प्रतिनिधि श्री एफ०ई० जेम्स ने पन्त जी की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"काँग्रेस पार्टी के उपनेता संयुक्त प्रान्त के पण्डित गोविन्दबल्लभ पन्त अपनी पार्टी के आर्थिक विषयों के चेस्टरटन हैं। वे एक तरफ राज समाजवाद और दूसरी ओर राज अर्थवाद के सच्चे अन्वेषक हैं।"

पन्त जी बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। गान्धी उनकी राजनैतिक सूझबूझ से काफी प्रभावित थे। वे महत्वपूर्ण राजनैतिक वार्ताओं में उन्हें सदैव अपने साथ रखते थे। पन्त जी के महान् व्यक्तित्व से प्रभावित होकर गान्धी जी ने उनके बारे में कहा—"फिरोज मेहता हिमालय के समान विशाल हैं; लोकमान्य तिलक समुद्र के समान गम्भीर हैं; गोखले गंगा के समान सरल हैं; पर पण्डित गोविन्दबल्लभ पन्त के व्यक्तित्व में इन तीनों गुणों का समावेश एक साथ मिलता है।"

पन्त जी की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे साधारणतया गान्धी जी के विचारों के पोषक होने पर भी यदि कभी कुछ क्रान्तिकारी कदम भी उठ जायें तो अपने मार्ग से विचलित नहीं होते थे।

गोविन्दबल्लभ पन्त ने अपना सम्पूर्ण जीवन जनता तथा राष्ट्र की सेवा में समर्पित कर दिया था, अतः २६ जनवरी, सन् १९५७ को उन्हें 'भारत रत्न'

की उपाधि से विभूषित किया गया। पन्त जी अपने जीवन की अन्तिम अवधि तक स्वावलम्बी बने रहे। ७ मार्च, १९६१ ई० को इस महान् स्वातन्त्र्य योद्धा तथा राष्ट्रनिर्माता का देहावसान हो गया। उनकी मृत्यु के शोक में व्याकुल होकर जवाहरलाल नेहरू ने कहा—"हिमालय की धूल में पैदा होने वाला वह व्यक्ति हिमालय जैसा महान् था। हिमालय वहीं है, उसकी महानता में आस्था उतनी ही है, लेकिन पन्त जी के निधन से महसूस होता है कि उस पर चमकने वाला एक तेज और बवंडरों में रास्ता दिखाने वाली रोशनी कहीं गुम हो गई है।"

डॉ० फ्रैंक केन के अनुसार कोई भी व्यक्ति साहस, नम्रता तथा आज्ञाकारिता के गुणों से ही महान् बन सकता है। हमारे प्रिय नेता गोविन्दबल्लभ पन्त में इन तीनों गुणों का समावेश एक साथ दिखाई देता था। दृढ़ मनोबल और अनुशासन प्रियता के गुण तो उनमें देखते ही बनते थे। पन्त जी का व्यक्तिगत जीवन सरलता और निस्स्वार्थता पर आधारित था। वे खद्दर-प्रेमी, कुशल प्रशासक, सफल वक्ता, तर्क के धनी, व्यवहार में विपक्ष के प्रति भी उदार, दलितों के देवता, छुआ-छूत के विरोधी, तीक्ष्ण बुद्धिवाले और भारत के कतिपय प्रमुख राष्ट्र निर्माताओं में से एक हैं।

यह एक महत्वपूर्ण बात है कि पन्त जी का जन्म कट्टरपन्थी ब्राह्मण परिवार में हुआ और उनका पालन-पोषण तथा प्रारम्भिक शिक्षा (हाईस्कूल तक) ब्रिटिश सरकार के सहायक व समर्थक सदर अमीन बद्रीनाथ जोशी के घर में हुआ था, लेकिन पन्त जी पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने स्वतन्त्र विचारधाराओं के वातावरण में अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का विकास कर समाज में व्याप्त छुआछूत की कुप्रथा को दूर करने के लिए प्रयत्न किए तथा देश को स्वतन्त्र करने के लिए ब्रिटिश शासन के विरुद्ध तीव्र संघर्ष किया। उपरोक्त वातावरण में पले व्यक्ति द्वारा इस प्रकार कार्य किए जाना निस्सन्देह अपने आप में एक महान् उपलब्धि है।

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि वर्तमान समय में गोविन्दबल्लभ पन्त के सुपुत्र कृष्णचन्द्र पन्त भारत सरकार के ऊर्जा मंत्री रहे। उन्होंने वर्तमान विषम परिस्थितियों में अपनी नेता श्रीमती इन्दिरा गान्धी के कन्धे से कन्धा मिलाकर देश को सुखी, समृद्धिवान तथा समाजवाद के लक्ष्य की ओर अग्रसर करने में सहयोग दिया। उनके कार्यों का विवेचनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यदि उन्हें 'योग्य पिता का योग्य पुत्र' की उपाधि से विभूषित किया जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है, उत्तराखण्ड के अतीत को स्नेहभरी निगाहों से देखना।

कूर्मांचलकेसरी बद्रीदत्त पाण्डे (१८८२–१९६५)

"कमिश्नर साहब, कितनी गोलियाँ चलाओगे तुम? चलाओ, पर यह समझ लो कि जनता की चट्टान उनसे नहीं टूटेगी। तुम्हारी गोलियाँ खत्म हो जायेंगी और तुम असहाय होकर खड़े रह जाओगे। कमिश्नर साहब कितनी गोलियाँ हैं तुम्हारे पास? यहाँ चालीस हजार बहादुर लोग हैं। ये सब लाशों के ढेर हो जायेंगे, पर इनमें से एक भी आदमी पीछे नहीं हटेगा।"

कूर्मांचलकेसरी बद्रीदत्त पाण्डे का जन्म १५ फरवरी, सन् १८८२ ई० में भागीरथी के तट पर स्थित कनखल (हरिद्वार) में हुआ था। इनके पिताजी विनायकदत्त पाण्डे एक धार्मिक विचार के सात्विक पुरुष थे और कनखल में वैद्य थे। केवल सात वर्ष की ही अवस्था में बद्रीदत्त को माता-पिता के स्नेह से वंचित होना पड़ा, किन्तु बड़े भाई हरिदत्त ने इतने प्रेम से अपने छोटे भाई बद्रीदत्त का पालन-पोषण किया कि उन्हें अपने माता-पिता की मृत्यु से उत्पन्न दुःख का आभास भी नहीं होने पाया और १८८९ ई० में ही सपरिवार अल्मोड़ा आ गये। बद्रीदत्त ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा जिला स्कूल अल्मोड़ा में प्रारम्भ की। सन् १८९६ ई० में स्वामी विवेकानन्द अल्मोड़ा आये। किशोर बद्रीदत्त स्वामी विवेकानन्द के भाषण से अत्यधिक प्रभावित हुए। बद्रीदत्त बचपन से भ्रष्टाचार के विरोधी थे और स्कूल में बड़े भाई भुवनेश्वर व बद्रीदत्त का बड़ा बोलबाला था। १८९६ ई० में दोनों भाइयों ने अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह की बलवती भावना का प्रथम परिचय दिया। जाड़ों में लकड़ी-कोयले के लिए मिलने वाली धनराशि एवं क्रीड़ा शुल्क को कुछ अध्यापक व्यक्तिगत प्रयोग में लाते थे। 'अल्मोड़ा अखबार' में इस विषय पर एक लेख छपा जिसमें धन के दुरुपयोग का आँकड़े सहित विवरण दिया गया था। डिप्टी कमिश्नर ने प्रधानाध्यापक से स्पष्टीकरण माँगा। प्रधानाध्यापक ने दोनों भाइयों को उपरोक्त लेख लिखने के विरुद्ध स्कूल से निकाल देने की धमकी दी।

इस पर दोनों भाइयों ने कहा कि अगर उन्हें विद्यालय से निष्कासित किया गया तो वे डिप्टी कमिश्नर साहब के सम्मुख पूर्व विवरण प्रस्तुत कर देंगे। अन्याय के विरुद्ध उनकी यह पहली विजय थी।

बद्रीदत्त जी को बचपन से ही भाषण देने व सुनने का अत्यधिक शौक था। उस समय उनके विद्यालय में डिबेटिंग सोसायटी थी। बद्रीदत्त उसमें भाग लेते और उसके माध्यम से व्याख्यान देते थे।

दुर्भाग्यवश इसी समय बद्रीदत्त के बड़े भाई श्री हरिदत्त पाण्डे की मृत्यु हो जाने के कारण बद्रीदत्त को पढ़ाई छोड़नी पड़ी और १६०२ ई० में सरगूजा राज्य में (छोटा नागपुर में) महाराजा के अस्थाई व्यक्तिगत सचिव नियुक्त हुए। वहाँ व्याप्त भ्रष्टाचार को देखकर एवं स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण बद्रीदत्त पुनः अल्मोड़ा आ गये व १६०३ ई० में नैनीताल डाइमण्ड जुबली विद्यालय में अध्यापक नियुक्त हो गये। इसी वर्ष उनका विवाह अन्नपूर्णा देवी से हुआ, जो धीर, गम्भीर व धार्मिक स्वभाव की स्त्री थीं।

सन् १६०५ में बद्रीदत्त को देहरादून के मिलिट्री वर्कशॉप में अच्छी नौकरी मिल गयी और कुछ दिनों पश्चात् उनका स्थानान्तरण चकरौता हो गया। सन् १६०८ में उन्होंने इस नौकरी से भी त्यागपत्र दे दिया तथा यहीं से उनका राजनैतिक जीवन प्रारम्भ हुआ।

सन् १६०८ में बद्रीदत्त पाण्डे इलाहाबाद से निकलने वाले अंग्रेजी दैनिक 'लीडर' के सहायक व्यवस्थापक एवं सहायक सम्पादक नियुक्त हुए। सन् १६१० ई० में वे इलाहाबाद छोड़कर देहरादून चले आये और देहरादून से प्रकाशित होने वाले 'कॉस्मोपोलिटन' अखबार में कार्य करने लगे व १६१३ ई० तक इसी पत्रिका के सम्पादक रहे।

सन् १६१३ में बद्रीदत्त पाण्डे अल्मोड़ा आ गये और 'अल्मोड़ा अखबार' के सम्पादक नियुक्त हुए। उन्होंने अल्मोड़ा अखबार को राष्ट्रीय ढंग से प्रकाशित किया। ग्राहक संख्या पचास से बढ़कर पाँच सौ हो गयी। इस पत्र ने समाज में व्याप्त अनेक कठिनाइयों के विरुद्ध लेख लिखे। अल्मोड़ा जिले के डिप्टी कमिश्नर एक दिन एक सुन्दरी के साथ जंगल में रंगरेलियाँ मना रहे थे। उन्होंने एक आदमी से शराब मँगवायी। उसे शराब लाने में कुछ देर हो गयी तो क्रोधित होकर प्रेमपाश में बँधे प्रेमी लोमस (डिप्टी कमिश्नर) ने उसे गोली मार दी। बद्रीदत्त ने १६१८ के होली अंक में एक गजल लिखकर लोमस के उपर्युक्त कारनामों का भण्डाफोड़ कर दिया। फिर क्या था, डिप्टी कमिश्नर के क्रोध का पारा सातवें आसमान पर जा पहुँचा; फलतः 'अल्मोड़ा अखबार' से जमानत माँगी गयी और न देने पर अखबार का प्रकाशन बन्द हो गया। 'अल्मोड़ा अखबार' के माध्यम से बद्रीदत्त ने राजनैतिक चेतना और सामाजिक सुधारों पर बल दिया।

सन् १६१८ में 'अल्मोड़ा अखबार' के बन्द हो जाने पर विजयदशमी के दिन

'शक्ति साप्ताहिक' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। बद्रीदत्त पाण्डे १९१८ ई० से १९२६ ई० तक इस पत्र के सम्पादक रहे। इस पत्र के माध्यम से देश प्रेम, अंग्रेजों के अत्याचारों का वर्णन, समाज में व्याप्त बुराइयों पर कुठाराघात एवं राजभक्तों पर कटाक्ष किये जाते थे। उदाहरण के लिए बद्रीदत्त का शक्ति में प्रकाशित एक लेख का अंश इस प्रकार है—"गेहूँ व धान की फसलें पानी बिना सूखती है; पर रायबहादुरी की फसलें हर साल तरक्की पर हैं !"

ब्रिटिश काल में कुमाऊँ एवं ब्रिटिश गढ़वाल में कुली उतार, कुली बेगार, कुली बर्दायश नामक कुप्रथाएँ व्याप्त थीं, जिन्हें यहाँ सामाजिक कलंक कहा जाता था। बद्रीदत्त पाण्डे ने इस कलंक को समाप्त करने में सर्वाधिक कार्य किया।

सन् १९१६ ई० में 'कुमाऊँ-परिषद्' की स्थापना हुई, जिसका मुख्य उद्देश्य कुमाऊँ के तीनों जिलों (अल्मोड़ा, नैनीताल, ब्रिटिश गढ़वाल) में राजनैतिक, सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों को हल करना था। सन् १९१८ में इस परिषद् का अधिवेशन तारादत्त गैरोला की अध्यक्षता में हल्द्वानी में हुआ, जिसमें यह प्रस्ताव रखा गया कि सरकार को नोटिस दिया जाय कि वह दो वर्ष में इन कुप्रथाओं को समाप्त कर दे। प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो गया। इसके तुरन्त पश्चात् बद्रीदत्त पाण्डे कुमाऊँ में व्याप्त इस प्रथा से महात्मा गान्धी को अवगत कराने के लिए कलकत्ता गये।

जब दो वर्ष की अवधि में सरकार ने इस ओर कोई ध्यान न दिया, तो कुमाऊँ-परिषद् का ऐतिहासिक अधिवेशन सन् १९२० ई० में काशीपुर में हुआ। इस अधिवेशन में कुली उतार, कुली बेगार व कुली बर्दायश न देने का प्रस्ताव पास हुआ और इन प्रथाओं की समाप्ति हेतु जनवरी, १९२१ में बागेश्वर के मकर-संक्रान्ति के मेले में लोगों को आने को कहा गया। इस अधिवेशन में पाण्डे जी ने एक महत्वपूर्ण भाषण दिया, जिसका मुख्य अंश निम्न प्रकार है—"कुमाऊँ नौकरशाही का दृढ़ दुर्ग है। यहाँ नौकरशाही ने सबको कुली बना रखा है। सबसे पहले हमें कुमाऊँ के माथे से कुली कलंक को हटाना है, तभी हमारा देश आगे बढ़ सकता है।"

इस अधिवेशन के पश्चात् २३ दिसम्बर १९२० ई० को बद्रीदत्त पाण्डे के नेतृत्व में बीस व्यक्तियों का एक समूह महात्मा गान्धी से मिलने नागपुर काँग्रेस में गया। उन्होंने महात्मा गान्धी से कुमाऊँ में आने को कहा। जब महात्मा गान्धी ने व्यस्तता के कारण आने में असमर्थता प्रकट की, तो उन्होंने कुली उतार, कुली

बेगार, कुली बर्दायश कुप्रथाओं के विरुद्ध आन्दोलन में सफलता प्राप्ति हेतु आशीर्वाद माँगा। गान्धी जी ने इन कुप्रथाओं की समाप्ति के लिए अपना आशीर्वाद दिया। इसके पश्चात् बद्रीदत्त ने उपर्युक्त कुप्रथाओं की समाप्ति के लिए स्वयं कुमाऊँ के गाँवों का दौरा किया।

कार्यक्रम के अनुसार जनवरी, १९२१ ई० को मकर-संक्रान्ति के दिन बद्रीदत्त पाण्डे, हरगोविन्द पन्त और चिरंजीलाल के नेतृत्व में एक विशाल जनसमूह बागेश्वर में एकत्रित हुआ। डिप्टी कमिश्नर डायबिल इक्कीस अंग्रेज व पचास भारतीय पुलिस के जवानों के साथ वहाँ जा पहुँचा। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के शब्दों में "यह दृश्य संसार के जन-आन्दोलन का एक अनुपम दृश्य था। सरयू के किनारे कोई चालीस हजार आदमी, जिनके चेहरे नये जीवन के तेज से प्रदीप्त थे, रजिस्टरों को हाथ में झण्डों की तरह ऊँचा उठाये खड़े थे और महात्मा गान्धी की जय बोल रहे थे। दूसरे किनारे पर अंग्रेज अधिकारी ने आतंक के भूत को अन्तिम साँस देने का प्रयत्न किया और सिपाहियों को निशाना साधने का आदेश दिया। अब सरयू के एक तट पर मौत थी और दूसरे पर जिन्दगी। दोनों में धैर्य-साहस का मैच था और बीच में सरयू अपनी लहरों के रूप में हिलोरें लेकर एक चंचल रेफ्री की तरह दोनों का निरीक्षण कर रही थी।"

ऐसी स्थिति में बद्रीदत्त पाण्डे ने डिप्टी कमिश्नर को ललकारते हुए सिंह-गर्जना की—"कमिश्नर साहब, कितनी गोलियाँ चलाओगे तुम ? चलाओ, पर यह समझ लो कि जनता की चट्टान उनसे नहीं टूटेगी। तुम्हारी गोलियाँ खत्म हो जायेंगी, तुम असहाय होकर खड़े रह जाओगे। कमिश्नर साहब, कितनी गोलियाँ हैं तुम्हारे पास ? यहाँ चालीस हजार बहादुर लोग हैं। ये सब लाशों के ढेर हो जायेंगे, पर इनमें से एक भी आदमी पीछे नहीं हटेगा।" इस ललकार को सुनकर डिप्टी कमिश्नर साहब वापस लौट गये और दमन के लिए उठी संगीनें झुक गईं।

इसके पश्चात् डायबिल ने बद्रीदत्त पाण्डे को अपने पास बुलाकर धमकाया, "तुम यहाँ गदर मचा रहे हो, प्रजातन्त्र स्थापित करना चाहते हो, अंग्रेज सरकार की शक्ति को भी जानते हो ?" प्रत्युत्तर में बद्रीदत्त पाण्डे ने कहा—"हाँ, मैं जानता हूँ; तुम जेल, फाँसी, सब कुछ कर सकते हो।" डायबिल ने बद्रीदत्त को झिड़कते हुए कहा—"यहाँ से शीघ्र चले जाओ, नहीं तो जानते हो—क्या होगा ?" बद्रीदत्त पाण्डे ने निडरता से उत्तर दिया—"शायद आप गिरफ्तार कर लेंगे।" तत्पश्चात् बद्रीदत्त पाण्डे ने डायबिल का सन्देश जनता को सुनाया। जनता ने

बद्रीदत्त का ही समर्थन किया। इस पर बद्रीदत्त पाण्डे ने कहा—"यहाँ से मेरी लाश जायेगी, पर मैं नहीं जाऊँगा।" इसके पश्चात् चालीस हजार लोगों ने बागनाथ की शपथ एवं सरयू का जल हाथ में लेकर एक स्वर से कुली उतार, बेगार, बर्दायश न देने की शपथ ली। बद्रीदत्त ने कहा—"तो अब संगम पर से पानी उठाकर शपथ लो कि आज से आप कुली उतार बन्द कर देंगे। यदि किसी ने कुली उतार दिया तो उसके सात पुरखे नरक में जायें।" तत्पश्चात् मालगुजारों ने रजिस्टर सरयू में बहा दिये।

यह एक सफल आन्दोलन सिद्ध हुआ, जिसके परिणामस्वरूप कुमाऊँ एवं ब्रिटिश गढ़वाल से उपर्युक्त कुप्रथाओं का अन्त हो गया। आन्दोलन की सफलता पर महात्मा गान्धी ने 'यंग इण्डिया' में लिखा—"The effect was complete—a bloodless revolution." आन्दोलन के उत्साहपूर्ण एवं सफल नेतृत्व के लिए बद्रीदत्त पाण्डे को 'कूर्मांचलकेसरी' की पदवी से विभूषित और दो स्वर्ण पदकों से पुरस्कृत किया गया, जिन्हें उन्होंने १९६२ में भारत पर चीनी आक्रमण के समय देश के सुरक्षा कोष में दे दिया। उपर्युक्त आन्दोलन में पाण्डे जी के वीरतापूर्ण नेतृत्व के विषय में बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है—"यदि पं० बद्रीदत्त जी ने केवल उस प्रथा (कुली उतार) को बन्द कराने का ही कार्य अपने जीवन में किया होता, तो भी वे चिरस्थायी कीर्ति के भागी होते, पर उनका सम्पूर्ण जीवन ही अनाचारों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए व्यतीत हुआ था।"

कुमाऊँ के समाज में सर्वाधिक घृणित बुराई नायक जाति में वेश्यावृत्ति की प्रथा थी। इस जाति के लोग अपनी बालिकाओं से वेश्यावृत्ति करवाते थे। 'सेवा-समिति' ने नायक सुधार कार्य प्रारम्भ किया, जिसमें बद्रीदत्त को संयोजक बनाया गया। बद्रीदत्त ने समाज में व्याप्त इस कुप्रथा की समाप्ति का बीड़ा उठाया, फलस्वरूप थोड़े ही दिनों में नायक प्रथा समूल नष्ट हो गई।

बद्रीदत्त भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के सक्रिय नेता होने के कारण पाँच बार जेल गये; सर्वप्रथम १९२१ में पकड़े गये और बरेली जेल में भेज दिये गये। पाण्डेजी के कालकोठरी के वृत्तान्त रोंगटे खड़े कर देने वाले हैं। उन्हें तरह-तरह से परेशान किया गया, किन्तु बद्रीदत्त पाण्डे बेहद साहसिक प्रकृति के थे। वे कभी भी किसी के सम्मुख झुके नहीं तथा उन्होंने सदैव स्वाभिमानपूर्वक अंग्रेज अधिकारियों को फटकारा, जिनमें कुछ उल्लेखनीय घटनाएँ इस प्रकार हैं—जब वह बरेली जेल में थे तो एक सुपरिण्टेण्डेण्ट ने बद्रीदत्त पाण्डे को चिढ़ाते हुए कहा—"तुम्हें स्वराज्य मिल गया।" बद्रीदत्त ने उत्तर दिया—"स्वराज्य की बात तो मैं जानता नहीं, किन्तु बीमार होने पर भी खूब मजे में हूँ।" यह सुनकर सुपरिण्टेण्डेण्ट ने

बद्रीदत्त को उत्तेजित करने के उद्देश्य से कहा—"देखो कैसे सुन्दर फूल खिले हैं और कितना सुन्दर बँगला है, इससे अच्छा स्वराज्य और क्या हो सकता है ?" प्रत्युत्तर में बद्रीदत्त ने कहा—"यदि आपको मेरी परिस्थिति से ईर्ष्या हो तो आप मेरे सुन्दर स्वराज्य में आ जाइये और मैं आपके बँगले में चला जाऊँगा।"

बरेली के कारावास में यातना पा रहे बद्रीदत्त को एक दिन कारावास अधीक्षक ने गोभी के पौधे लगाने को दिये। उन्होंने जड़ को ऊपर करके पत्तों को मिट्टी में गाड़ दिया। अधीक्षक ने जब यह देखा तो क्रोधित होकर उनसे ऐसा करने के बारे में पूछा, तो पाण्डे जी ने उत्तर दिया कि अंग्रेजों की जड़ उखाड़ने के दोष पर तो उन्हें जेल भेजा गया है, फिर उनसे यह आशा करना कि किसी रूप में वह उनकी जड़ें लगायेंगे, निराशामात्र है। इस पर अधीक्षक ने उन्हें पन्द्रह दिनों की काल कोठरी की सजा दी। प्रथम बार उन्हें एक वर्ष की जेल हुई थी। जून १९३० में पुनः पकड़े गये और एक वर्ष छह माह की सजा हुई। १० जून, १९३२ में तीसरी बार पकड़े गये और एक वर्ष की कैद हुई। सन् १९४० में छः माह व सन् १९४२ में दो वर्ष की कैद हुई।

सन् १९२९ में महात्मा गान्धी कुमाऊँ में आये। बद्रीदत्त उनके साथ बागेश्वर गये। वहाँ आयोजित सभा में बद्रीदत्त पाण्डे ने एक अत्यन्त हृदयस्पर्शी भाषण दिया, जिसका मुख्य अंश इस प्रकार है—"इसी डाकबँगले से नौकरशाही प्रजा के ऊपर अन्याय करती थी। आज अन्याय की जगह न्याय के देवता यहाँ पधारे हैं। इसमें आज स्वराज्य की मुहर लग गयी है।"

जब पाण्डे जी कारावास में यातनाएँ झेल रहे थे तो उन्हें तार मिला कि उनका पुत्र तारकनाथ, जो प्रयाग में बी० एस-सी० में पढ़ता था, जन्माष्टमी के दिन गंगा में डूब गया है और उसके दुःख में उसकी बहिन जयन्ती ने बम्बई में आत्मदाह कर लिया है, पर पाण्डे जी ने अपनी अदम्य सहनशक्ति से इस घोर विपत्ति का सामना किया। दुःख को भुलाने के लिए उन्होंने 'कुमाऊँ का इतिहास' नामक पुस्तक की रचना प्रारम्भ कर दी। यद्यपि वर्तमान समय में कुछ लोग इस महत्वपूर्ण कृति की आलोचना करते हैं, तथापि यह ग्रन्थ कुमाऊँ के इतिहास पर शोधकार्य कर रहे शोधकर्ताओं के लिए आधारभूत एवं प्रेरणा-स्रोत तथा जनसाधारण के लिए कुमाऊँ का इतिहास जानने का प्रमुख साधन है। यह ग्रन्थ जिस दुःखदायी स्थिति में लिखा गया है और उत्तराखण्ड के शोधकर्ताओं के लिए जिस मात्रा में वरदान सिद्ध हो रहा है, उस पर विचार कर यह अपने आप में एक महान् उपलब्धि है।

बद्रीदत्त पाण्डे कई बार अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी, प्रदेश काँग्रेस

कमेटी के सदस्य रहे और जिला काँग्रेस कमेटी अल्मोड़ा के कई बार अध्यक्ष रहे।

पाण्डे जी सन् १६२६ में उत्तर प्रदेश कौंसिल के सदस्य निर्वाचित हुए, सन् १६३१ में अल्मोड़ा जिला-परिषद् के सदस्य, सन् १६३७ में केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य, १६४६ में उत्तरप्रदेश कौंसिल के सदस्य, १६५५ में भारतीय लोक-सभा के सदस्य, सन् १६५४ में, 'टर्पनटाइण्ट फेक्टरी' बरेली के डाइरेक्टर मनोनीत हुए।

१६४७ ई० में जब चुनाव की तैयारियाँ हो रही थीं, तो बद्रीदत्त काँग्रेस प्रत्याशी छाँटने गढ़वाल गये थे। वहाँ वे गढ़वाल के प्रसिद्ध मेले गोचर में भी गये। गोचर के प्रमुख मैदान में एक ओर सरकारी मेला लगा था और दूसरी ओर काँग्रेस का विशाल सम्मेलन हो रहा था। मेले में जिलाधीश भ्रनिडी मेले के सर्वेसर्वा थे। कर्मांचलकेसरी ने एक गर्जना में जिलाधीश को सम्बोधित करते हुए कहा—"अ भ्रनिडी, दूसरे वर्ष हम गोचर में स्वराज्य लेकर आयेंगे। आजाद देश के आजाद नागरिक इकट्ठा होंगे, तुर्री बजायेंगे और पूरी खायेंगे।"

बद्रीदत्त पाण्डे अपनी वृद्धावस्था में भी स्वावलम्बी रहे और उनकी स्मरण शक्ति तीव्र बनी रही। इसका मुख्य कारण उनका संयत तथा सात्विक जीवन ही था। पाण्डे जी के त्यागपूर्ण तथा तपस्यामय जीवन में उनकी धर्मपत्नी अन्नपूर्णा देवी का प्रमुख हाथ था। उन्होंने अपने पति के साथ अनेक आर्थिक व मानसिक कष्ट झेले व सफलतापूर्वक उनका सामना किया।

१३ फरवरी, १६६५ को इस महान् स्वतन्त्रता-सेनानी का स्वर्गवास हो गया।

भक्तदर्शन के शब्दों में "स्वर्गीय श्री बद्रीदत्त पाण्डे जी वास्तविक अर्थों में समस्त कुमाऊँ प्रदेश के नर-केसरी थे। उन्होंने उस जमाने में अपनी अद्भुत वीरता और साहस का परिचय दिया था, जबकि स्वराज्य का नाम लेना भी घन-घोर अपराध समझा जाता था। उन्होंने अपनी अतुलनीय संगठन शक्ति के द्वारा उत्तर प्रदेश के समस्त पर्वतीय क्षेत्र में, और विशेषकर अल्मोड़ा जिले में, क्रान्ति की एक ऐसी चिनगारी जलाई थी, जो धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते एक दावानल के रूप में प्रकट हुई और उसके परिणामस्वरूप बेगार, बर्दायश तथा वन सम्बन्धी कष्टों से जनता को मुक्ति प्राप्त हुई। हमारे पर्वतीय क्षेत्रों की जनता इसलिए उन्हें शताब्दियों तक याद करती रहेगी।"

बद्रीदत्त पाण्डे एक महान् क्रान्तिकारी, स्वतन्त्रता-संग्राम के वीर योद्धा, सुलझे हुए उच्च कोटि के पत्रकार, निर्भीक लोक-सभा सदस्य, महान् समाज

सुधारक, निश्छल और निष्कपट व्यक्ति थे। बद्रीदत्त पाण्डे के प्रभाव से साधारण लोग भी काँग्रेस के सिपाही बन गये। उनका सम्मान अखिल भारतीय नेता भी करते थे। किसी के आगे उन्होंने झुकना नहीं सीखा था। उन्होंने कुमाऊँ-गढ़वाल के अनेक दौरे कर वहाँ राष्ट्रीय चेतना की ज्योति जलाई। बद्रीदत्त केवल एक महान् नेता ही नहीं, बल्कि एक सशक्त लेखक, स्पष्ट वक्ता व कुशल पत्रकार भी थे। उन्होंने देश के लिए हमेशा कष्ट झेले, सामाजिक व राजनीतिक क्रान्ति की। कुली-उतार, बेगार एवं बर्दायिश तथा नायक प्रथा, जो कुमाऊँ के समाज को कलंकित कर रहे थे, पाण्डे जी ने उन्हें समाप्त करवाया। कहा जाता है कि पं० गोविन्दबल्लभ पन्त पाण्डे जी को अपना राजनैतिक गुरु मानते थे और उनके उग्र राष्ट्रीय विचारों को देखकर अंग्रेज उन्हें राजनैतिक जानवर कहते थे।

बद्रीदत्त पाण्डे के समकालीन महान् स्वतन्त्रता-सेनानी, गान्धीभक्त एवं महान् देशभक्त शान्तिलाल त्रिवेदी के शब्दों में "बद्रीदत्त का पहाड़ सा भरा शरीर, शेर की दहाड़ जैसी बुलन्द आवाज, जनता के दिल को स्पर्श करने वाला भाषण तथा विनोदपूर्ण चुटकियाँ आज भी जनता याद करती है।"
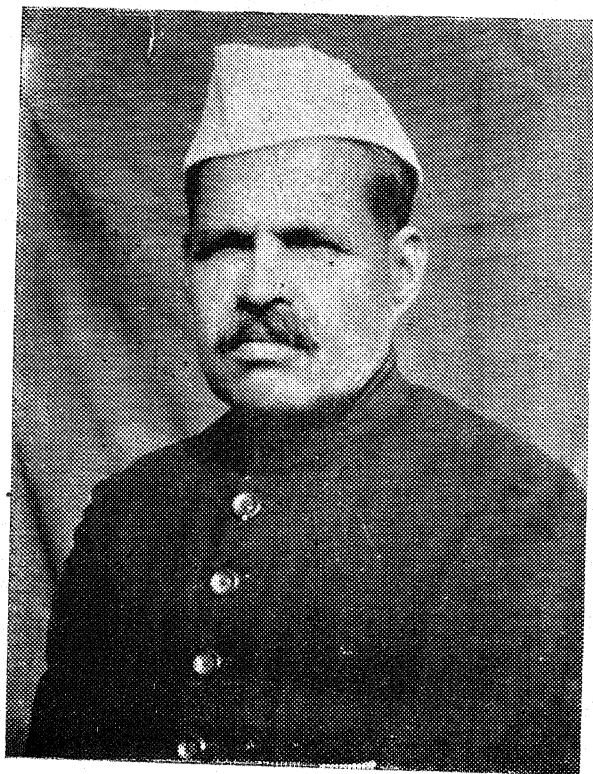
आजादी का महान् योद्धा
लोकनायक हरगोविन्द पन्त

लोकनायक हरगोविन्द पन्त (१८८५–१९५७ ई०)

"इसमें कोई शक नहीं है कि हमारा मुकाबला एक बड़ी जाति से है, पर इस पराधीनता के कलंक को धो डालना हमारा कर्तव्य है।.....बिना स्वाधीनता प्राप्त किये किसी देश और मनुष्य का कष्ट दूर नहीं हो सकता और न उसका विकास ही हो सकता है.....चाहे दुनिया पलट जाये पर अब हिन्दुस्तान का निश्चय नहीं पलट सकता। भारत अवश्य आजाद होगा।"

हरगोविन्द पन्त का जन्म सन् १८८५ ई० में अल्मोड़ा नगर के निकट चितई नामक ग्राम में एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। यह वही स्थान है, जहाँ से पन्त लोगों की एक उपशाखा नेपाल की राजधानी काठमांडू चली गई थी। हरगोविन्द के पिता श्री धर्मानन्द पन्त पुलिस विभाग में थानेदार के पद पर थे। हरगोविन्द पन्त की प्रारम्भिक शिक्षा चितई के पास सिराड़ नामक स्कूल में हुई थी।

सन् १९०३ में हरगोविन्द पन्त ने सरकारी हाईस्कूल अल्मोड़ा से प्रथम श्रेणी में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् 'म्यौर सेण्ट्रल कॉलेज' इलाहाबाद में विद्याध्ययन हेतु गये। वहाँ से सन् १९०७ में बी० ए० तथा सन् १९०९ में कानून की परीक्षा उत्तीर्ण की। बचपन से ही उनमें नेता के गुण झलकते थे। अपने विद्यार्थीकाल में ही उन्होंने अपने सहपाठी गोविन्दबल्लभ पन्त के सहयोग से युवकों के बौद्धिक विकास के लिए अल्मोड़ा में 'सोशल क्लब' की स्थापना की और कुछ वर्ष स्वयं उसके मंत्री भी रहे। जब पन्त जी इलाहाबाद में बी०ए० में अध्ययनरत थे, तो माघ के मेले में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन्हें परीक्षा में बैठने से रोक दिया गया, परन्तु बाद में काफी प्रयासों के बाद मदनमोहन मालवीय एवं सुन्दरलाल के हस्तक्षेप से यह बाधा हटी।

सन् १९०९ में वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण करके पन्त जी अल्मोड़ा वकील सभा (Bar Association) में सम्मिलित हो गये और साथ ही उन्होंने कुमाऊँ के सार्वजनिक जीवन में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। देशभक्त मोहन जोशी

द्वारा स्थापित होमरूल लीग में भी पन्त जी सम्मिलित हो गये। सन् १९१६ ई० में कुमाऊँ की राजनैतिक, सामाजिक, औद्योगिक और शिक्षा सम्बन्धी उन्नति के लिए 'कुमाऊँ-परिषद्' की स्थापना हुई। उसकी बुनियाद डालने वाले व्यक्तियों में पन्त जी प्रमुख थे।

'कुमाऊँ-परिषद्' का अधिवेशन प्रत्येक वर्ष कुमाऊँ के किसी प्रमुख स्थान पर हुआ करता था। इसमें कुमाऊँ के समाज को कलंकित करने वाले कुली उतार, कुली बेगार, कुली बर्दायिश एवं जंगलात सम्बन्धी कठिनाइयों एवं अन्य समस्याओं पर विचार विमर्श किया जाता था। सन् १९१८ में परिषद् का महत्वपूर्ण वार्षिक अधिवेशन तारादत्त गैरोला की अध्यक्षता में हल्द्वानी में हुआ। इस अधिवेशन में हरगोविन्द पन्त ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया कि कुली उतार, कुली बेगार और कुली बर्दायिश नाम की जो कुप्रथाएँ बन्दोवस्ती इकरारनामों के आधार पर कुमाऊँ के तीनों जिलों में प्रचलित हैं, गैरकानूनी और अपमानजनक हैं। इन कुप्रथाओं को अतिशीघ्र बन्द किया जाय अन्यथा इनके विरुद्ध आन्दोलन किया जायेगा। हरगोविन्द पन्त का यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो गया।

जब ब्रिटिश सरकार ने दो वर्ष तक इस ओर कोई ध्यान न दिया तो दिसम्बर १९२० में हरगोविन्द पन्त की अध्यक्षता में काशीपुर में 'कुमाऊँ-परिषद्' का ऐतिहासिक वार्षिक अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में कहा गया कि चूँकि कुली-उतार, बेगार व बर्दायिश गैरकानूनी हैं, अतः इन्हें न दिया जाय और मकर-संक्रान्ति के अवसर पर बागेश्वर में सब लोग आकर इन कुप्रथाओं को समाप्त कर दें।

अधिवेशन के प्रस्तावानुसार जनवरी, १९२१ ई० में कुमाऊँ के लगभग चालीस हजार लोगों ने उपर्युक्त कुप्रथाओं की समाप्ति हेतु बागेश्वर में मकर-संक्रान्ति के मेले में भाग लिया। हरगोविन्द पन्त, बद्रीदत्त पाण्डे और चिरजी लाल ने इस वृहद् जनसमूह का नेतृत्व किया। फलस्वरूप इन कुप्रथाओं का अन्त हो गया।

कुली उतार, कुली बेगार, कुली बर्दायिश की बागेश्वर में समाप्ति की सूचना जब ब्रिटिश अधिकारियों तक पहुँची तो उन्होंने इन कुप्रथाओं को सल्ट में लागू करने का कार्यक्रम निश्चित किया और वे सल्टवासियों को खानाबदोस कहते थे। सल्ट एक पिछड़ा हुआ क्षेत्र था और कुमाऊँ के प्रमुख नेता उस स्थान से अनाभिज्ञ थे। हरगोविन्द पन्त ने सल्ट में कुली उतार, कुली बेगार, कुली बर्दायिश को समाप्त करने एवं ब्रिटिश अधिकारियों की नयी योजना को विफल करने का बीड़ा

उठाया। उन्होंने सल्ट जाकर वहाँ के परिचित लोगों से सलाह-मशविरा कर दन्पूड़ा, देवायल आदि स्थानों पर सभा आयोजित कर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आन्दोलन की अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी। ब्रिटिश अधिकारी जो अपनी योजना को कार्यान्वित करने सल्ट पहुँच गये थे, उन्हें असफल होकर वापस जाना पड़ा। तभी से हरगोविन्द पन्त सल्ट के राजनैतिक गुरु माने जाने लगे। अब सल्ट की जनता का पन्त जी पर अटल विश्वास हो गया। पन्त जी राष्ट्रीय आन्दोलनों का सन्देश लेकर समय-समय पर सल्ट जाते रहते थे।

बद्रीदत्त पाण्डे द्वारा डिप्टी कमिश्नर लोमस के कारनामों का भण्डाफोड़ कर देने के कारण 'अल्मोड़ा अखबार' से जमानत माँगी गयी। जमानत न देने के कारण अखबार का प्रकाशन बन्द हो गया। अतः १९१८ में बद्रीदत्त के सम्पादन में जब 'शक्ति' साप्ताहिक के प्रकाशन की योजना बनी, तो सर्वप्रथम हरगोविन्द पन्त ने एक हजार रुपया चन्दा दिया, जिससे शक्ति के प्रकाशन में बाधा डाल रही आर्थिक समस्या सुलझ गयी।

बागेश्वर एवं सल्ट में कुली उतार, कुली बेगार, कुली बर्दायश प्रथाओं को समाप्त कर सन् १९२१ में हरगोविन्द पन्त ने छः माह के लिए अपने व्यवसाय वकालत का भी परित्याग कर दिया और रचनात्मक कार्यों हेतु अपनी जेब से तेइस सौ रुपये खर्च कर सीतलाखेत में सिद्धाश्रम चलाया। इसके पश्चात् पन्त जी ने देशभक्त भगीरथ पाण्डे के साथ मिलकर प्रेम विद्यालय, ताड़ीखेत की स्थापना की। इसके संचालन में भी उनका प्रमुख हाथ था। प्रेम विद्यालय, ताड़ीखेत ने रचनात्मक कार्यों के साथ-साथ स्वतन्त्रता-संग्राम को चलाने के लिए भी कई अच्छे-अच्छे कार्यकर्ताओं को जन्म दिया। प्रत्येक संस्था को सुचारु रूप से अपना कार्य संचालित करने के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है। पन्त जी ने इस संस्था को आर्थिक सहयोग प्रदान किया और संस्था के पंजीकरण होने के पश्चात् वे इस संस्था के प्रबन्ध कमेटी के प्रधान चुने गये।

हरगोविन्द प्रखर बुद्धि के एक नामी वकील थे। जनसाधारण में स्वतन्त्रता की भावना जागृत करने एवं काँग्रेस का सन्देश जनता को सुनाने के लिए एक ओढ़ने की पंखी लेकर वर्षों ग्राम-ग्राम में घूमे। इससे उनका जीवन एक तपस्वी की भाँति बन गया था।

सन् १९२५ से १९२९ ई० तक पन्त जी अल्मोड़ा जिला-परिषद् के अध्यक्ष रहे। अपने कार्यकाल में जिला-परिषद् में उन्होंने कताई-बुनाई पर विशेष ध्यान दिया; साथ ही साथ ग्राम सुधार को प्रोत्साहन तथा नये प्राइमरी एवं जूनियर हाईस्कूल खोलकर वहाँ देशप्रेम के गीतों का प्रचार किया। अपनी ओर से पाँच

सौ रुपये खर्च करके उन्होंने स्कूलों में महात्मा गान्धी व लोकमान्य तिलक के चित्र लगाये। ग्राम सुधार के लिए लोगों को ढाल-तलवार पुरस्कार स्वरूप दी गयीं।

पन्त जी ने पैदल ही सम्पूर्ण जिले का भ्रमण किया और जिला-परिषद् से कोई भत्ता नहीं लिया। तत्कालीन कमिश्नर स्टाइक ने भी इनके कार्यों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

उत्तराखण्ड के समाज में कुलीन ब्राह्मणों द्वारा हल न चलाने की प्रथा शताब्दियों से चली आ रही थी। इससे जनता के आर्थिक स्तर में निरन्तर ह्रास हो रहा था; क्योंकि उच्च कुलीन ब्राह्मणों की खेती दूसरों पर ही आश्रित रहती थी। समाज में व्याप्त इस कुप्रथा के विरुद्ध पन्त जी ने चुनौती स्वीकार की। सन् १९२८ में हरगोविन्द पन्त ने इस कुप्रथा को समाप्त करने के उद्देश्य से बागेश्वर में अपने हाथ से हल चलाया। हरगोविन्द पन्त जैसे कुलीन ब्राह्मण द्वारा हल चलाने से ग्रामीण समाज और अर्थव्यवस्था में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। यह उत्तराखण्ड के आर्थिक एवं सामाजिक क्रान्ति के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। गोविन्दबल्लभ पन्त ने हरगोविन्द पन्त के इस कार्य का जोरदार शब्दों में समर्थन किया।

बीसवीं शताब्दी की प्रारम्भिक दो दशाब्दियों तक ब्रिटिश गढ़वाल में सामाजिक सुधारों एवं सांस्कृतिक विकास का युग रहा। सन् १९१९ के बाद गढ़वाल में राजनैतिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके फलस्वरूप १९२१ में कुली उतार, कुली बेगार, कुली बर्दायश का अन्त हुआ और १९३० ई० में दोगड्डा में प्रथम राजनैतिक सम्मेलन हुआ, जिसका सभापतित्व हरगोविन्द पन्त ने किया। सत्याग्रह के संघर्ष के लिए गढ़वाल में यह पहली कॉंफ्रेंस थी। इसमें सत्याग्रह की रूपरेखा तैयार की गई। इसके पश्चात् जून १९३० में पौड़ी में फिर हरगोविन्द के सभापतित्व में राजनैतिक सम्मेलन हुआ। इस सभा में राजनैतिक आन्दोलन की रूप-रेखा तैयार की गई।

१९३० ई० में पन्त जी ने रानीखेत में शराब भट्टी पर धरना बैठाया और उसमें उन्हें सफलता मिली और शराब की भट्टी वहाँ से हटा दी गयी। इसी वर्ष उन्होंने रानीखेत तहसील की सल्ट पट्टियों में लगान बन्दी आन्दोलन चलाया।

हरगोविन्द पन्त राष्ट्रीय कॉंग्रेस के अधिवेशनों में सन् १९०५ से ही प्रत्येक वर्ष भाग लेने लगे थे। रानीखेत में उन्होंने 'नशा निवारण समिति' की स्थापना और उसके स्वयं अध्यक्ष रहे। रानीखेत कैण्टोनमेण्ट बोर्ड के भी पन्त जी सदस्य एवं उप प्रधान रहे। रानीखेत में उन्होंने अपने ही रुपयों से एक कन्या पाठशाला और सार्वजनिक वाचनालय स्थापित करवाया। कन्या पाठशाला बाद में

जिला-परिषद् ने अपने प्रबन्ध में और वाचनालय का प्रबन्ध कैण्टोनमेण्ट बोर्ड ने अपने हाथ में ले लिया।

सन् १९३० के बाद पन्त जी ने वकालत छोड़ दी। अल्मोड़ा में उन्होंने 'संस्कृत विद्यालय' स्थापित करवाया। 'गान्धी विद्यानिकेतन' नैनीताल को भी उन्होंने आर्थिक सहायता दी और 'कुमाऊँ बटालियन' को स्थापित करवाया तथा एक बार टूटने पर पुनः स्थापित करने में उन्होंने महत्वपूर्ण साहस का परिचय दिया। पन्त जी की वकालत की सबसे प्रमुख विशेषता यह थी कि वे गरीबों के मुकदमों में निशुल्क पैरवी करते थे। उन्होंने वकालत के माध्यम से जो कुछ भी अर्जित किया वह देश सेवा में समर्पित कर दिया। पन्त जी ने न केवल कुछ संस्थाओं को स्थापित किया वरन् उन्हें अपने ही धन से पाला-पोसा भी था।

पन्त जी काँग्रेस के एक सक्रिय सदस्य रहे। कुछ वर्ष अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के सदस्य रहे। अल्मोड़ा काँग्रेस की उन्हें रीढ़ कहा जाता था। पन्त जी की लोकप्रियता का सर्वोत्तम प्रमाण यह है कि वे चुनाव में कभी भी पराजित नहीं हुए। पन्त जी उत्तराखण्ड में काँग्रेस के एक सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में आगे आये थे; फलस्वरूप उन्हें सन् १९३०, १९३२, १९४० के आन्दोलन में क्रमशः डेढ़ वर्ष व एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गयी थी।

अप्रैल, १९४० में अल्मोड़ा में राष्ट्रीय सप्ताह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। राष्ट्रीय सप्ताह के उपलक्ष में १० अप्रैल, १९४० ई० को नन्दादेवी के प्रांगण में हरगोविन्द पन्त ने एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया, जिसके मुख्य अंश निम्न हैं—"इसमें कोई शक नहीं कि हमारा मुकाबला एक बड़ी जाति से है, पर इस पराधीनता के कलंक को धो डालना हमारा परम कर्तव्य है.....बिना स्वाधीनता प्राप्त किये किसी देश और मनुष्य का कष्ट दूर नहीं हो सकता और न उसका विकास ही हो सकता है.....चाहे दुनिया पलट जाये, पर अब हिन्दुस्तान का निश्चय नहीं पलट सकता। भारत अवश्य आजाद होगा।"

सन् १९४२ ई० के भारत छोड़ो आन्दोलन में पन्त जी को अल्मोड़ा जिले में सर्वप्रथम नजर बन्द किया गया। स्वतन्त्रता-संग्राम की अवधि में लगभग छः वर्ष तक पन्त जी ने जेल की कठोर यातनाएँ सहीं।

सन् १९२३ ई० में पन्त जी अल्मोड़े जिले से स्वराज्य पार्टी के टिकट पर भारी बहुमत से व्यवस्थापिका सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। अपने कार्यकाल में पन्त जी ने अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर लगभग छः सौ प्रश्न उठाये और प्रस्ताव प्रस्तुत किये। सन् १९३७ ई० में पुनः उत्तरप्रदेश की असेम्बली के लिए निर्वाचित घोषित हुए। सन् १९४६ में अल्मोड़ा जिले से प्रान्तीय असेम्बली के लिए

भारी बहुमत से विजयी हुए। २६ जनवरी, १९५० ई० तक विधान निर्मात्री परिषद् के सदस्य रहे। सितम्बर, १९५० ई० में उन्हें विधान-सभा का उपाध्यक्ष चुना गया। सन् १९५०-५६ ई० तक बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी के अध्यक्ष भी रहे। पन्त जी ने मन्दिर के कोष में वृद्धि कर कई निर्माण कार्य करवाये। सन् १९५७ में भारी बहुमत से लोक-सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। सभी पदों पर उन्होंने योग्यतापूर्वक कार्य कर अपनी असाधारण कार्यक्षमता का परिचय दिया। हरगोविन्द पन्त अल्मोड़ा जिला काँग्रेस कमेटी के प्राण थे। वे अत्यन्त कुशलता से समस्याओं का समाधान करते थे। उनमें बच्चों जैसी सरलता, बेफिक्री, तपस्वियों की सी गम्भीरता, सहिष्णुता व सदा प्रसन्न रहने के स्वाभाविक गुण विद्यमान थे। पन्त जी सादगी की मूर्ति थे और अभिमान ने उन्हें स्पर्श तक नहीं किया था। पन्त जी उत्तराखण्ड के राजनैतिक ही नहीं, धार्मिक नेता भी थे। अल्मोड़ा जिले में भोटपर्यन्त उनके दौरे होते थे। उनकी असाधारण योग्यता कुछ विरोधियों के लिए असह्य बन गई। अतएव सन् १९५१ में हैदराबाद काँग्रेस में कुछ लोगों ने उन्हें मारने का असफल प्रयास भी किया था।

पन्त जी हमेशा कार्य में व्यस्त रहते थे। वे जनसाधारण एवं उत्तराखण्ड के नेताओं में सर्वाधिक परिचित एवं प्रिय थे। पाली-पछाऊँ (जिला अल्मोड़ा) में हर बालक-बूढ़ा उनको जानता था। बच्चे उनसे अगाध स्नेह रखते थे। इसका प्रमुख कारण कई वर्षों तक उनकी लगातार जनसेवा थी। राष्ट्रीय आन्दोलनों में पन्त जी ने तन, मन, धन से समर्पित होकर कार्य किया और निरन्तर गाँवों में राष्ट्रीय कार्यों में व्यस्त रहे। ब्रिटिश सरकार उन्हें खतरनाक समझती थी। उत्तराखण्ड के प्रत्येक देशप्रेमी की जबान पर उनका नाम था। हरगोविन्द पन्त एक निर्भीक व्यक्ति थे। उनकी निर्भीकता की छाप देश के अनेक लोगों पर पड़ी थी।

मई, १९५७ ई० में हरगोविन्द पन्त की मृत्यु हो गयी। कहा जाता है कि उन्हें भोजन में विष दिया गया था। चिकित्सक भी उनकी मृत्यु के कारण को सही रूप में ज्ञात न कर पाये। पन्त जी की मृत्यु पर स्वयं लोकसभा के अध्यक्ष ने संसद के समक्ष निम्न भाव प्रकट किये थे—"The doctors were not able to diagnose the exact cause of death but some kind of food poisioning was suspected." मृत्यु के समय पन्त जी की अवस्था बहत्तर वर्ष की थी।

हरगोविन्द पन्त की मृत्यु पर गोविन्दबल्लभ पन्त ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा—"हरगोविन्द पन्त एक महान् व्यक्ति थे। कुमाऊँ के गाँवों का

बच्चा-बच्चा उन्हें जानता है और कूर्मांचल में कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ वे न गये हों या उन्होंने सेवा न की हो। युवाकाल में उनमें संयम और स्फूर्ति इतनी थी कि एक दिन में हल्द्वानी से चितई पैदल पहुँच गये। क्रोध उन्हें छू भी न गया था। कुमाऊँ-परिषद् बनी, वे उसके प्रधान चुने गये। कुली उतार, जो कूर्मांचल में एक श्राप था, उससे छुटकारा कराया। हरिजनोद्धार में योग दिया। हम दोनों ने एक साथ हरिजन बस्ती में जाकर जल पीया। बागेश्वर में सर्वप्रथम हल चलाकर उन्होंने जाति-पाँति के भेदभाव का अन्त किया। विधान-परिषद् के सदस्य रहे। उत्तर प्रदेश विधान सभा में कार्य किया। डिप्टी स्पीकर रहे, बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी के अध्यक्ष भी रहे। इन्होंने निस्स्वार्थ भाव से कार्य किया। स्वभाव इतना सरल था कि साधारण से साधारण व्यक्ति उनसे खुलकर बातें कर सकता था। कुमाऊँ, जिसको अंग्रेजों ने पिछड़ा प्रदेश बना दिया था, हरगोविन्द व बद्रीदत्त ने उसे जान दी, मैं उन्हें अपना अभिन्न अंग मानता हूँ। सामाजिक जीवन में वे लोकप्रिय हो गये थे और कूर्मांचल समाज के संरक्षक रहे।"

डॉ० सम्पूर्णानन्द ने उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए कहा, "उनके देहावसान से उत्तर प्रदेश की आजादी का महान् योद्धा उठ गया।"

हरगोविन्द पन्त को कुमाऊँ से अत्यधिक प्रेम था। वह कुमाऊँ की सार्वजनिक सभाओं में कुमाऊँनी भाषा में ही बोलते थे। पन्त जी जनता के सच्चे प्रतिनिधि थे। उनकी परोपकारी भावना उनके निम्न कथन से स्पष्ट हो जाती है—"जिले में टेस्टवर्क खोले जाने की नितान्त आवश्यकता है। जब तक नये उद्योग-धन्धे खोलकर जनता को आर्थिक लाभ नहीं पहुँचाया जाता, अन्न उपलब्ध होने पर भी वे उसे खरीदने में सर्वथा असमर्थ ही रहेंगे।"

अमर शहीद श्री देवसुमन (सन् १९१६-१९४४ ई०)

"जिस राज्य की नीति अन्याय, अत्याचार व स्वेच्छाचारिता पर अवलम्बित हो, उसके विरुद्ध विद्रोह करना प्रत्येक नागरिक का मूल कर्तव्य है। यही मैंने किया और शरीर में दम रहते हुए मैं बराबर यही करता रहूँगा। माँ, बहिन, भाई व पत्नी के प्रेम पर देश प्रेम ने और घर-बार, बच्चों व सम्बन्धियों के कष्टों पर पीड़ितों और शोषितों की आहों ने विजय प्राप्त कर ली है। मैं क्या करूँ? अन्तर्रात्मा की आवाज यही है।"

सुमन का जन्म २५ मई, १९१६ ई० को टिहरी राज्य की बमुण्ड पट्टी के 'जौल' नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिताजी का नाम हरिराम बडूणी था। वे खेती और वैद्यक का काम करते थे। सन् १९१९ ई० में टिहरी राज्य में हैजा फैला। हरिराम बडूणी परोपकारी एवं समाजसेवी होने के कारण हैजे से ग्रस्त व्यक्तियों की सेवा में व्यस्त रहते थे, जिसके फलस्वरूप अपने चार अबोध बच्चों को छोड़कर केवल छत्तीस वर्ष की अवस्था में ही उन्हें हैजे के कारण मृत्यु का मुँह देखना पड़ा।

सुमन ने चम्बा की पाठशाला से प्राइमरी परीक्षा उत्तीर्ण की, तत्पश्चात् सन् १९३२ ई० में टिहरी मिडिल स्कूल से हिन्दी मिडिल की परीक्षा पास कर देहरादून हिन्दू नेशनल स्कूल में अध्यापक हो गये। इसके बाद सुमन ने लाहौर और दिल्ली में अपनी शैक्षिक योग्यताएँ बढ़ाने का प्रयत्न किया। सन् १९३४ में पंजाब की भूषण, १९३५ में प्रभाकर, १९३६ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विशारद, १९३७ और १९४१ ई० में साहित्य एवं राजनीति में साहित्य रत्न की परीक्षाएँ पास कीं।

सन् १९३० ई० में ही जब सुमन की अवस्था केवल चौदह वर्ष की थी, तो उन्होंने देहरादून जाकर नमक सत्याग्रह में भाग लिया और पकड़े जाने पर उन्हें १४-१५ दिनों की जेल एवं कुछ बैंतों की सजा मिली।

सन् १९३७ ई० में उन्होंने 'सुमन-सौरभ' नाम से अपनी कविताओं का

संग्रह प्रकाशित करवाया। उस पुस्तिका में इनकी राष्ट्रीय भावनापूर्ण फुटकर कविताएँ संगृहीत हैं। इसी समय (१९३९ ई०) उन्होंने कुछ माह साप्ताहिक 'हिन्दू' में सम्पादन कार्य किया फिर शंकराचार्य के अंग्रेजी साप्ताहिक 'धर्म-राज्य' में भी कार्य किया। सन् १९३७ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के शिमला अधिवेशन में वे स्वागत समिति के कार्यालयाध्यक्ष निर्वाचित हुए।

सन् १९३६ ई० में दिल्ली में 'गढ़देश-सेवा-संघ' की स्थापना हुई। देवसुमन ने उसके कार्यों में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। १९३८ ई० में उनका परिचय देश के महान् पुरुष डॉ० जाकिर हुसैन और काका कालेलकर से हुआ। सन् १९३८ ई० में उनका विवाह विनयलक्ष्मी से हुआ।

मई, १९३८ ई० में श्रीनगर में प्रतापसिंह नेगी की अध्यक्षता में राजनैतिक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में जवाहरलाल नेहरू और विजय लक्ष्मी पण्डित ने भी भाग लिया था। श्रीनगर के राजनैतिक सम्मेलन में सुमन ने गढ़वाल के दोनों भागों (ब्रिटिश गढ़वाल एवं टिहरी गढ़वाल राज्य) की अखण्डता पर जोर देते हुए कहा—"यदि गंगा हमारी माता होकर भी हमें आपस में मिलाने के बजाय हमें दो हिस्सों में बाँटती है तो हम गंगा को भी पाट देंगे।" श्रीनगर के राजनैतिक सम्मेलन से पूर्व सुमन का कार्य-क्षेत्र मुख्यतः साहित्यिक था। इस सम्मेलन ने उनके जीवन को निश्चित कार्य-क्षेत्र प्रदान किया। सम्मेलन में सुमन ने नेहरू जी एवं विजय लक्ष्मी को टिहरी राज्य की अत्याचारी नीति से अवगत कराया। सम्मेलन में गढ़वाल के दोनों भागों के कार्यकर्ताओं के सक्रिय सहयोग से गढ़वालियों के कष्ट को दूर करने का सुमन ने संकल्प लिया।

२३ जनवरी, १९३९ ई० को देहरादून में 'टिहरी राज्य प्रजामण्डल' की स्थापना हुई। श्री देवसुमन के प्रवेश से पूर्व 'टिहरी राज्य प्रजामण्डल' केवल राज्य के बाहर बैठकर प्रस्ताव पास करने वाली संस्था मात्र थी। सुमन ने उसमें प्रवेश कर नये जीवन का संचार कर दिया। उन्होंने कहा—"यदि एक भी व्यक्ति अपने आदर्श पर कायम रहेगा तो वह भी प्रजामण्डल के असली उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करेगा।....हम गुप्त समितियों और छिपे तरीकों में कतई यकीन नहीं करते। मेरा तो विश्वास है कि यदि हमें मरना ही है तो अपने सिद्धान्तों और विश्वास की सार्वजनिक घोषणा करते हुए मरना श्रेयस्कर है।"

फरवरी, १९३९ ई० को लुधियाना में 'अखिल भारतीय देशी राज्य लोक-परिषद्' का अधिवेशन जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ। टिहरी राज्य प्रजामण्डल की संयोजक समिति के प्रतिनिधि के रूप में सुमन ने उसमें भाग

लिया। सुमन को इस अधिवेशन में लोक-परिषद् की स्थायी समिति (स्टैंडिंग कमेटी) में हिमालय प्रान्तीय देशी राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में ले लिया गया। चौबीस वर्ष से भी कम आयु वाले व्यक्ति के लिए निश्चय ही यह अत्यन्त गौरव की बात थी। सुमन ने इसे यथेष्ट योग्यतापूर्वक निभाया। अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए नेहरू जी ने देवसुमन के कार्यों की प्रशंसा करते हुए कहा—"पहाड़ी रियासतों का प्रतिनिधित्व करने वाले ठोस नुमाइन्दा श्री देवसुमन ही हैं। उनके त्याग एवं कर्तव्यपरायणता की हम सबको इज्जत करनी चाहिए। सच तो यह है कि दूसरी रियासतों के नुमाइन्दों को सुमन जी की कार्य करने की योग्यता से बहुत कुछ सीखना चाहिए।"

सन् १९३९ ई० में लैंसडाऊन से कर्मभूमि साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, तो सुमन को सम्पादक मण्डल में सम्मिलित किया गया। उन्होंने इस पत्र द्वारा टिहरी राज्य में होने वाले अत्याचारों पर प्रकाश डाला और जनता में चेतना का संचार करने का प्रयत्न किया।

नवम्बर, १९३९ ई० में दिल्ली में हिमालय प्रान्तीय कार्यकर्ताओं का सम्मेलन हुआ तथा दिसम्बर में समस्त हिमालय प्रान्तीय सम्मेलन हुआ। दोनों सम्मेलनों में सुमन ने पर्वतीय राज्यों में जनता के कष्टों पर प्रकाश डाला। इसी सम्मेलन में 'गढ़देश देवा-संघ' नाम बदलकर 'हिमालय सेवा-संघ' कर दिया गया।

अप्रैल, १९४० ई० में रामगढ़ काँग्रेस में भाग लेने के पश्चात् सुमन देहरादून पहुँचे। उन्होंने गान्धी जी के नेतृत्व में जनता को जागृत करने की योजना बनाई। अतः मई, १९४० ई० में उन्होंने नरेन्द्रनगर के जनरल मिनिस्टर तथा चीफ सेक्रेटरी से भेंट की और सभाओं पर लगे प्रतिबन्ध को हटाने का अनुरोध किया। जब बातों से कोई प्रभाव नहीं हुआ तो सुमन ने टिहरी नगर में सार्वजनिक सभा आयोजित करनी चाही, लेकिन मजिस्ट्रेट ने सभा करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। बीस दिनों तक गाँवों में भ्रमण करते हुए सुमन मसूरी चले गये। अक्टूबर में वे पुनः टिहरी आये, परन्तु उनके भाषण पर प्रतिबन्ध लग जाने से वे लौट गये।

राज्य के अन्तर्गत सुमन का सर्वाधिक प्रभाव छात्रों पर था। सुमन टिहरी में प्रताप इण्टर कॉलेज के छात्रों से यदा-कदा मिलते रहते थे और उन्हें जागृति उत्पन्न करने वाला साहित्य दे आते थे। सुमन एक प्रभावशाली नवयुवक थे। उन्होंने, दिल्ली, देहरादून और लाहौर में जो पर्वतीय निवासी पेट पूजा के लिए चले गये थे, उन्हें संगठित किया। टिहरी राज्य की ओर से प्रजामण्डल को मान्यता न देने के कारण उनका संगठन देहरादून में ही किया गया था। अर्थात् टिहरी राज्य प्रजामण्डल राज्य से बाहर रहकर टिहरी रियासत की जनता की सुविधाओं

के लिए प्रयत्न कर रहा था। टिहरी राज्य के अन्दर किसी प्रकार के संगठन की छूट न होने के कारण सत्य और अहिंसा का यह सन्देशवाहक अकेला हाथ में चरखा और झोले में किताबें लेकर पैदल टिहरी राज्य में भ्रमण करता था। उनके झोले में हिन्द स्वराज्य, सर्वोदय, ग्राम-सेवा, रचनात्मक कार्यक्रम, राष्ट्रीय गीत, नवयुवकों से दो बातें नामक पुस्तकें होती थीं। अधिकांशतः स्कूल के विद्यार्थी उनसे उपर्युक्त पुस्तकें खरीदते थे।

गढ़वाल के कार्यशील युवक श्री देवसुमन सन् १९४२ ई० के प्रारम्भ में टिहरी राज्य-प्रजा-परिषद् (टिहरी राज्य प्रजामण्डल) की सफलता के लिए आशीर्वाद माँगने सेवाग्राम, वर्धा में महात्मा गान्धी के पास पहुँचे। महात्मा गान्धी से मिलकर वे वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली (पेशावर का सैनिक विद्रोही नेता) से मिले और बोले--"जो मेरी इच्छा थी, आज बापू ने पूरी कर दी; क्योंकि बापू ने गढ़वाल के विषय में जो मेरी तजबीज थी, उसे मंजूर कर लिया और आशीर्वाद दिया कि मैं सत्य और अहिंसा के द्वारा टिहरी राज्य में प्रजा की सेवा करूँ। मेरे लिए जीवन-मरण का सवाल है, क्योंकि टिहरी की जनता बेहद दुःखी है।" श्री देवसुमन ने चन्द्रसिंह को सम्पूर्ण गढ़वाल की स्थिति से अवगत कराया। श्री देवसुमन एक असाधारण प्रतिभाशाली युवक थे। वे नवयुवकों से कहा करते थे, "क्या तुम अपने को चाँदी के चन्द टुकड़ों में बेच डालोगे।"

बापू से आशीर्वाद लेकर श्री देवसुमन ने जब टिहरी राज्य के अन्दर प्रजा-मण्डल के कार्य को चलाने का निश्चय किया और वह मुनीकीरेती से अपने गाँव जौल होते हुए ३० अप्रैल, १९४२ ई० को टिहरी पहुँचे तो मुनिकीरेती से ही पुलिस उनके पीछे चल रही थी। ९ मई को उन्हें पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। दो दिन हिरासत में रखने के पश्चात् ११ मई की रात्रि में उन्हें एक मोटर में बैठा कर मुनिकीरेती पहुँचाया गया तथा उन्हें राज्य से निष्कासित होने का आदेश दिया गया।

पहली जुलाई को उन्होंने पुनः राज्य में प्रवेश किया तो पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया व कुछ दिनों तक हिरासत में रखने के उपरान्त पुनः राज्य की सीमा से बाहर निकाल दिया। इसके पश्चात् सुमन एवं शंकरदत्त डोभाल ने 'टिहरी राज्य प्रजामण्डल' के पंजीकरण करने के लिए अनेक प्रयत्न किये, लेकिन सफलता नहीं मिली।

अगस्त, १९४२ ई० में भारत छोड़ो आन्दोलन चला। ८ अगस्त १९४२ ई० में बम्बई में ही देशी राज्य लोक-परिषद् की स्थायी समिति की बैठक हुई, जिसमें देशी राजाओं से माँग की गयी थी कि वे ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध विच्छेद

कर दें। जनता ने 'ब्रिटिश सरकार से नाता तोड़ो' और 'प्रजा से नाता जोड़ो' के नारे बुलन्द किये। सुमन लोक-परिषद् की बैठक में भाग लेने के पश्चात् टिहरी जाकर कार्यकर्ताओं की बैठक में भाग लेना चाहते थे। जब सुमन टिहरी जा रहे थे तो २९ अगस्त, १९४२ ई० में उन्हें देव प्रयाग में गिरफ्तार कर लिया गया और देहरादून जेल में नजरबन्द रखा गया। वहाँ से उन्हें आगरा जेल में भेज दिया गया। सुमन ने हाईकोर्ट में अपील की कि उन्हें टिहरी राज्य की जेल में ही रखा जाय, परन्तु उनकी अपील नहीं सुनी गयी।

१९ नवम्बर, १९४३ ई० में सुमन को आगरा जेल से मुक्त किया गया। आगरा जेल से छूटने के पश्चात् सुमन ने पुनः टिहरी राज्य में प्रवेश कर जन सेवा करने का निर्णय किया, तो उनके कुछ शुभचिन्तकों ने उन्हें टिहरी राज्य की भीषण स्थिति से अवगत कराया और कहा कि ऐसी स्थिति में टिहरी राज्य में प्रवेश करना खतरे से खाली नहीं है। इस पर सुमन ने उत्तर दिया, "मेरा कार्य-क्षेत्र टिहरी में है, वहीं कार्य करना व जनता के अधिकारों के लिए सामन्ती शासन के विरुद्ध लड़ना व मरना मेरा पुनीत कर्तव्य है।.....मैं अपने शरीर के कण-कण को नष्ट हो जाने दूँगा, किन्तु टिहरी राज्य के नागरिक अधिकारों को सामन्ती शासन के पंजे से नहीं कुचलने दूँगा।"

१५ दिसम्बर, १९४३ ई० को उन्होंने जनरल मिनिस्टर को पत्र लिखा कि मैं शान्ति की भावना से मिलना चाहता हूँ, १८ दिसम्बर को वे नरेन्द्र नगर पहुँचे। मुख्य पुलिस अधिकारी ने उन्हें टिहरी जाने की अनुमति दे दी, परन्तु थोड़ा आगे बढ़ते ही एक पुलिस अधिकारी ने उनके सिर से टोपी उतारकर उन्हें भद्दी गालियाँ देते हुए टोपी को जूते में फँसाकर फाड़ डाला और धमकी दी—"घर गये तो घर को उड़ा दिया जायेगा।" सुमन शान्त रहे और एक सप्ताह घर पर विश्राम किया। पुलिस बराबर उनके गाँव में उनके क्रिया-कलापों को देखती रही।

२७ दिसम्बर १९४३ को सुमन ने टिहरी राज्य में प्रवेश करने के लिए यात्रा प्रारम्भ की, परन्तु चम्बा में उन्हें आदेश मिला, "आपका टिहरी जाना मना है।" सुमन वहीं सड़क पर बैठ गये व जनरल मिनिस्टर और चीफ सेक्रेटरी को पत्र लिखा कि प्रजामण्डल का उद्देश्य अकारण संघर्ष करना नहीं है। मुझे पुलिस ने बिना मजिस्ट्रेट की आज्ञा के तथा बिना कारण आगे बढ़ने से रोका है। उन्होंने अपने पत्र में यह भी लिखा कि मैं आपके पत्र के इन्तजार में यहीं रुका हूँ। वे तीन दिन तक अपने पत्र के उत्तर के इन्तजार में चम्बा में रुके रहे, लेकिन अपने को प्रजा का भाग्य विधाता समझने वाले गर्वीले जनरल मिनिस्टर और चीफ सेक्रेटरी भला एक नवयुवक समाजसेवी के पत्र का उत्तर क्यों देते ?

राज्य के बड़े अधिकारियों को अपने सहानुभूतिपूर्ण लिखे गये पत्र का उत्तर देशभक्त सुमन को गिरफ्तारी के रूप में मिला। ३० दिसम्बर, १९४३ ई० में सुमन को टिहरी कारागार में बन्द कर दिया गया। कारागार में पहुँचते हुए उनके वस्त्र छीन लिये गये। उनको नंगा करके आठ नम्बर वार्ड में बिना किसी बिस्तर के अकेले बन्द कर दिया गया। उन्हें डराया-धमकाया तथा माफी माँगने को कहा गया, परन्तु सुमन ने झुकने से इनकार कर दिया और कहा, "तुम मुझे तोड़ सकते हो पर मोड़ नहीं सकते।" इस पर उन पर बैंत बरसाये गये और पैंतीस सेर की बेड़ियाँ उनके पैरों में डाल दी गयीं।

सुमन को भूसे व रेत से मिश्रित रोटियाँ दी गयीं। जब सुमन ने उन्हें खाने से इनकार कर दिया, तो उस शीत ऋतु में उन पर बाल्टियों और पिचकारियों से ठण्डा पानी फेंका गया। सुमन सात दिन तक बिना खाये-पिये तथा बिना बिस्तर गीले फर्श पर उन भारी बेड़ियों से जकड़े पड़े रहे। सुमन की दृढ़ भावना को देखते हुए सातवें दिन जेल के कर्मचारियों को कुछ झुकना पड़ा। सुमन के बिस्तर, कपड़े तथा हजामत का सामान उन्हें लौटा दिया गया। बेड़ियाँ खोल दी गयीं और आश्वासन दिया गया कि उन्हें पत्र व्यवहार करने की सुविधा दी जायेगी।

२१ फरवरी, १९४४ ई० से सुमन पर राजद्रोह का केस चलाया गया। देहरादून के खुर्शीदलाल वकील को सुमन की पैरवी करने के लिए स्वीकृति नहीं दी गई, अतः सुमन ने स्वयं पैरवी की और बयान में कहा—मैं इस अभियोग को सर्वथा झूठा, बनावटी और बदले की भावना से चलाया गया मानता हूँ। मेरे विरुद्ध लाये गये साक्षी सर्वथा बनावटी हैं। वे या तो सरकारी कर्मचारी हैं या पुलिस के आदमी हैं। मैं जहाँ अपने भारत देश के लिए पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय में विश्वास करता हूँ, वहाँ टिहरी राज्य में मेरा और प्रजामण्डल का उद्देश्य वैध व शान्तिपूर्ण उपायों से श्री महाराज की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना और सेवा के साधनों द्वारा राज्य की सामाजिक, आर्थिक तथा सब प्रकार की उन्नति करना है। टिहरी-महाराज और उनके शासन के विरुद्ध किसी प्रकार का विद्रोह, द्वेष और घृणा का प्रचार मेरे सिद्धान्त के बिलकुल विरुद्ध है। श्री महाराज के प्रति मैं पूर्ण सद्भावना, श्रद्धा व भक्ति के भाव रखता हूँ। मैंने प्रजा की भावना के विरुद्ध बने हुए काले कानूनों और कार्यों की अवश्य आलोचना की है। इसे मैं प्रजा का जन्मसिद्ध अधिकार समझता हूँ। सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त पर विश्वास करने वाला होने के कारण मैं किसी के प्रति घृणा और द्वेष का भाव नहीं रख सकता।

मैंने संघर्ष से बचने के लिए प्रजामण्डल को पंजीकृत करने की बात चलायी थी किन्तु झूठा आरोप लगाकर मुझे कारागार में बन्द कर दिया गया है तथा मुझे सब प्रकार की वैध व कानूनी सुविधाओं से पूर्णतः वंचित कर दिया गया है। यह मेरे प्रति अन्याय है।

सुमन के बयान का राजकर्मचारियों पर कोई प्रभाव न पड़ा और उन्हें दो साल की सजा और दो सौ रुपये का आर्थिक दण्ड (जुर्माना) दिया गया।

२९ फरवरी, १९४४ ई० से जेल कर्मचारियों के दुर्व्यवहार के विरोध में सुमन ने अनशन प्रारम्भ कर दिया। इसकी सूचना राज्य से बाहर न देने के लिए टिहरी-रियासत की ओर से पूरे प्रबन्ध किये गये, परन्तु स्वतन्त्रता-सेनानी सुन्दर-लाल बहुगुणा ने सुमन के अनशन के समाचार, समाचार-पत्रों में छाप दिये। तत्कालीन केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य बद्रीदत्त पाण्डे ने पूछताछ की। इस पर जेल में सुमन के साथ कुछ नर्म व्यवहार किया गया। फलस्वरूप उन्होंने अपना अनशन समाप्त कर दिया।

सुमन ने अपना अनशन उन्हें राज्य की ओर से दिये गये आश्वासनों पर ही तोड़ा था। अतः वे एक माह तक उन्हें दिये गये आश्वासनों की पूर्ति की प्रतीक्षा करते रहे, किन्तु राज्य की ओर से कोई आदेश नहीं मिला। जेल के कर्मचारियों ने फिर कठोर नीति अपनाई और उन्हें बैंतों की सजा मिलने लगी। परेशान होकर उन्होंने तीन माँगें राजा के पास भेजीं—(१) प्रजामण्डल को वैध करार करें; (२) मुझे पत्र-व्यवहार की स्वतन्त्रता दी जाये; (३) मेरे झूठे मुकदमे की अपील राजा स्वयं सुनें। उन्होंने यह भी कहा कि यदि पन्द्रह दिन तक मुझे इन माँगों का उत्तर न मिला तो मैं आमरण अनशन प्रारम्भ कर दूँगा। पन्द्रह दिनों तक उत्तर न मिलने पर सुमन ने अपने कथनानुसार ३ मई, १९४४ ई० से अपना ऐतिहासिक आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया।

अनशन प्रारम्भ करते ही उन पर अनेक अमानवीय अत्याचार किये जाने लगे। उनके पैरों में भारी बेड़ियाँ डाल दी गयीं। डण्डों से प्रहार किया जाने लगा। कई दिनों तक भोजन कराने का असफल प्रयास किया गया। एक दिन जब उन्हें बलपूर्वक दूध पिलाने का प्रयास किया गया तो उनके मुँह से रुधिर की धारा प्रवाहित होने लगी, लेकिन भारतमाता के इस सच्चे सपूत ने अपना मुँह नहीं खोला। निरन्तर अपनी लोहदण्ड नीति की असफलता को देखते हुए रियासती कर्मचारियों ने अनशन के पन्द्रहवें दिन से उन पर अत्याचार करने बन्द कर दिये। अठ्ठाइसवें दिन डॉक्टर और मजिस्ट्रेट ने दूध पिलाने का फिर असफल प्रयत्न किया। अड़तालीसवें दिन स्वास्थ्य एवं कारागार मंत्री डॉ०

बेलीराम ने भी सुमन को दूध पिलाने का असफल प्रयत्न किया। डॉ० बेलीराम ने प्रताप नगर राजा से सुमन को मुक्त कर देने को कहा, किन्तु राजा ने कोई उत्तर न दिया।

जब सुमन के आमरण अनशन का समाचार सारे देश में फैलने लगा तो बद्रीदत्त पाण्डे एम० एल० ए० (केन्द्रीय), लोक-परिषद् के मंत्री जयनारायण व्यास और प्रजामण्डल के भूतपूर्व अध्यक्ष गोविन्दराम भट्ट ने सुमन के सम्बन्ध में पूछताछ की। इस पर टिहरी रियासत की ओर से असत्य प्रचार किया गया कि वे राजनैतिक बन्दी नहीं हैं और जयनारायण व्यास को सूचना दी गयी कि उनका स्वास्थ्य सन्तोषजनक है और उन्होंने ११ जुलाई को अनशन तोड़ दिया है।

११ जुलाई तक सुमन का स्वास्थ्य चिन्ताजनक हो गया। डॉ० बेलीराम ने उन्हें ४ अगस्त, १९४४ ई० को महाराजा के जन्म दिवस पर मुक्त करने का आश्वासन दिया और कहा कि आप भूख हड़ताल तोड़ दें। राजा अपने जन्म दिवस पर सुमन को मुक्त करने का आदेश युवराज को देकर स्वयं बम्बई चले गये। राजा का कथन जब सुमन को सुनाया गया तो सुमन ने कहा—"क्या मैं छूटने के लिए अनशन कर रहा हूँ? मुझे छोड़ा गया तो मैं अपने उद्देश्यों के लिए बाहर भी अनशन जारी रखूँगा।"

सुमन के बिगड़ते हुए स्वास्थ्य को देखते हुए कुछ रियासती कर्मचारी उन्हें छोड़ने, अर्थात् जेल से मुक्त करने के पक्ष में थे, लेकिन कुछ अन्य कर्मचारी राजा के आदेश की आड़ में सुमन को ४ अगस्त तक जेल में रखने के लिए कटिबद्ध थे। अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने प्रचार किया कि सुमन निमोनिया से पीड़ित हैं। सुमन की चिकित्सा डॉ० नौटियाल कर रहा था। उन पर सुमन के प्रति सहानुभूति रखने का सन्देह होने के कारण डॉ० बलवन्तसिंह को सुमन की चिकित्सा का कार्यभार सौंपा गया। निमोनिया की कथित बीमारी में डॉ० बलवन्त ने सुमन को कुनैन के नसान्तर्गत (इण्ट्रावीनस) इंजेक्शन लगा दिये। कुनैन की गरमी ने सुमन के शरीर को सुखा दिया। वे 'पानी!' 'पानी!' चिल्लाने लगे और २० जुलाई से ही उन्हें बेहोशी आने लगी। २५ जुलाई १९४४ ई० को सुमन चौरासी दिनों की भूख हड़ताल के बाद प्रातः चार बजे टेरेस, मेक्विनी और यतीन्द्रनाथदास की तरह शहीद हो गये। रात्रि को अँधेरे में उनका शव एक बोरी में सीकर पास ही बहती भिलंगना नदी में फेंक दिया गया।

सुमन की मृत्यु के पश्चात् टिहरी राज्य की ओर से सुरेन्द्रदत्त नौटियाल को

स्पेशल मजिस्ट्रेट बनाकर सुमनकाण्ड की जाँच करवायी गयी। स्पेशल मजिस्ट्रेट ने पब्लिसिटी अफसर की २६ जुलाई वाली प्रेस विज्ञप्ति की पुष्टि की, जिसमें कहा गया था कि निमोनिया के कारण सुमन की मृत्यु हुई। टिहरी राज्य की ओर से एक ओर सुमनकाण्ड की जाँच का नाटक रचा जा रहा था तो और दूसरी ओर दो हजार रुपये के दण्ड की वसूली के लिए उनकी भूसम्पत्ति की कुर्की का आयोजन किया जा रहा था। लोक-परिषद् की ओर से बद्रीदत्त पाण्डे की अध्यक्षता में सुमन जाँच कमेटी नियुक्त की गई। सुमन जाँच कमेटी की रिपोर्ट पर लोक-परिषद् की स्थायी समिति ने अपना निष्कर्ष दिया कि सुमन की गिरफ्तारी अकारण हुई और उनके साथ कारागार में अमानुषिक अत्याचार हुए।

महाराजा के प्रति सुमन की श्रद्धाभक्ति सन्देह से सर्वथा रहित और स्फटिक मणि की भाँति निष्कलंक थी। सुमन के मामले में हस्तक्षेप न करके महाराजा नरेन्द्रशाह ने अपने कर्तव्य की नितान्त अवहेलना की। उन्होंने दोषी कर्मचारियों को कोई दण्ड नहीं दिया। इससे राजा और प्रजा के मध्य स्थित खाई और भी चौड़ी हो गई। सुमन जाँच समिति के अध्यक्ष बद्रीदत्त पाण्डे के अनुसार जिस प्रकार महाभारत में आठ महारथियों ने मिलकर अभिमन्यु को मारा था, उसी प्रकार टिहरी के अत्याचारी अधिकारियों ने उस अहिंसात्मक आधुनिक अभिमन्यु (श्री देवसुमन) को कारागार में ऐसी यातनाएँ दीं, जिससे सुमन को उस नारकीय जेल में जीवन को बिताने के बदले प्राण देने को उतारू होना पड़ा।

कहा जाता है कि सुमन के बलिदान से प्रभावित होकर ही जनरल मिनिस्टर मौलीचन्द्र शर्मा ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और उन्होंने कहा—"द्रोपदी के आँसुओं ने अत्याचारी कौरवों के अत्याचार का अन्त किया था, उन्नीस वर्षीय विधवा विनयलक्ष्मी के आँसू टिहरी के अत्याचारियों का अवश्य अन्त करेंगे।"

डॉ० शिवप्रसाद डबराल के अनुसार सुमन राष्ट्रप्रेमी, स्वस्थ, गम्भीर, सुन्दर एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला था। वह मितभाषी व मधुरभाषी था। जिसे एक बार मिल जाता उसे अपने दो-चार शब्दों से ही अपना घनिष्ठ मित्र बना लेता था। वह सच्चरित्र, लगनशील एवं अथक परिश्रम करने वाला था। उसकी सनातन धर्म, सन्ध्या-पूजा और गीता में श्रद्धा थी। वह भोला-भाला और निश्छल था। उसे अपने भाई, बहिन, माता, पत्नी की भी कोई चिन्ता नहीं थी, जितनी टिहरी के जनसाधारण की दशा सुधारने की थी; जैसा कि उनकी डायरी में लिखित उनके 'अन्तर्रात्मा की आवाज' नामक शीर्षक से स्पष्ट होता है—

"जिस राज्य की नीति अन्याय, अत्याचार व स्वेच्छाचारिता पर अव-

लम्बित हो, उसके विरुद्ध विद्रोह करना प्रत्येक नागरिक का मूल कर्तव्य है। यही मैंने किया और शरीर में दम रहते हुए मैं बराबर यही करता रहूँगा। माँ, बहिन, भाई व पत्नी के प्रेम पर देश प्रेम ने और पीड़ितों और शोषितों की आहों ने विजय प्राप्त कर ली है। मैं क्या करूँ? अन्तरात्मा की आवाज यही है।"

स्वतन्त्रता की वेदी पर आत्मोत्सर्ग करने वाले भारत के देशभक्तों में श्री देव सुमन का नाम अमर रहेगा। सुमन को मसल कर मिट्टी में मिला दिया गया है, परन्तु वायु ने उसकी सुगन्ध और बीजों को सर्वत्र फैला दिया है। ग्रीष्म के पश्चात् जब वर्षा ऋतु आयेगी तो सैकड़ों-हजारों सुमन खिले हुए दिखलायी पड़ेंगे। नेहरू जी के शब्दों में "सुमन ने साहस और त्याग का जो आदर्श उपस्थित किया वह चिरकाल तक लोगों को याद रहेगा और देशी राज्यों की जनता को अनु-प्राणित करता रहेगा।"

डॉ० पट्टाभिसीतारमैय्या के शब्दों में "युवा सुमन उन फूलों में से एक थे जो बिना देखे मुरझा जाने के लिए पैदा होते हैं, लेकिन वे अपने पीछे अपनी सुगन्ध छोड़ गये हैं। सुमन ने जो सेवाएँ कीं वे चिरकाल तक रहेंगी।"

खोखली सामन्तशाही के रक्षकों ने सोचा था कि अमर शहीद श्री देवसुमन के शव को भिलंगना की लहरों में बहाकर वे जनता के स्वर को भी दबा देंगे, पर यह असम्भव था। आज भी गढ़वाल की जनता 'सुमन' की याद में गीत गाती है। आज भी ये स्वर उठते हैं—"तू छई गरिबु को राजा, लड़ दी आजादी लड़ाई झम।"

प्रथम अगस्त, १९४९ ई० में टिहरी राज्य का विलीनीकरण हुआ। टिहरी राज्य विलय-महोत्सव के अवसर पर राष्ट्र का तिरंगा झण्डा हाथ में लिये शहीद श्री देवसुमन की तपसी अर्धांगिनी विनयलक्ष्मी 'सुमन' ही सबसे आगे थीं।

भारत की स्वतन्त्रता के बाद श्रीमती विनयलक्ष्मी सुमन कई वर्ष उ० प्र० विधान सभा की सदस्य रहीं। उन्होंने अपने पद पर योग्यतापूर्वक कार्य किया और गढ़वाल के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली (जन्म १८९१ ई०)

"पेशावर का विद्रोह, विद्रोहों की एक शृंखला पैदा करता है, जिसका भारत को आजाद कराने में भारी हाथ है। वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली इसी पेशावर विद्रोह के नेता और जनक थे।"

चन्द्रसिंह गढ़वाली का जन्म सन् १८९१ ई० में रोणैसेर ग्राम (गढ़वाल) के एक साधारण कृषक जथलीसिंह के घर में हुआ था। वे अपने को चौहान वंशीय मानते हैं। बचपन से ही चन्द्रसिंह बहुत नटखट एवं चंचल थे। यद्यपि चन्द्रसिंह प्रखर बुद्धि के थे, तथापि वे पारिवारिक समस्याओं के कारण उच्च-शिक्षा प्राप्त न कर सके। उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव के आस-पास के गाँवों में ही अर्जित की, तत्पश्चात् घर पर रहने लगे और चौदह वर्ष की अवस्था में उनका प्रथम विवाह सम्पन्न हुआ। ब्रिटिश काल में सेना में भर्ती हुए गढ़वालियों के ठाट-बाट देखकर चन्द्रसिंह सेना की ओर आकर्षित हुए, फलस्वरूप ३ सितम्बर, १९१४ में चन्द्रसिंह घर से भाग गये और ११ सितम्बर को लैंसडौन छावनी में २।३९ गढ़वाल राइफिल्स में भर्ती हो गये।

अगस्त, १९१५ ई० में चन्द्रसिंह प्रथम विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों की ओर से लड़ने के लिए अपने सैनिक साथियों के साथ फ्रांस पहुँचे। फ्रांस की जनता भारतीय सैनिकों के स्वागत के लिए आगे बढ़ी तो उन्हें पुलिस द्वारा रोका गया। इस पर एक भारतीय हवलदार ने अंग्रेज अधिकारी से पूछा—"हजूर क्या बात है, जो सारे शहर के लोग हम लोगों को देखने आ रहे हैं, पुलिस वालों ने उन्हें रोक दिया और उन पर लाठियाँ चलाईं।"

अंग्रेज अधिकारी ने खिलखिलाते हुए हवलदार के प्रश्न का उत्तर दिया—"अभी हाल ही में फ्रांस में हमारी सरकार ने एक नया कानून बनाया है कि कोई भी फ्रांसीसी किसी हिन्दुस्तानी से न मिले और न उनके साथ भाई-चारे का बर्ताव करे; क्योंकि हिन्दुस्तानी गुलाम हैं।" चन्द्रसिंह पर उपर्युक्त उत्तर का गहरा प्रभाव पड़ा। दो माह तक लड़ाई में भाग लेने के पश्चात् अक्टूबर १९१५ ई० में चन्द्रसिंह गढ़वाली स्वदेश, भारत आये। सन् १९१७ ई० में मेसोपोटानिया में अंग्रेजों की ओर से पुनः लड़ने गये तथा बाद में सकुशल भारत लौट आये।

पेशावर विद्रोह के नेता और जनक

वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली

सन् १९२० ई० में गढ़वाल में अकाल पड़ा। इसी समय पल्टनें तोड़ी गयीं और गढ़वाली सैनिकों को पल्टन से निकाल दिया गया। ओहदेदारों को सिपाही बना दिया गया। चन्द्रसिंह जो बड़े परिश्रम से हवलदार बने थे उन्हें पुनः सिपाही बना दिया गया। इस समय देश में महात्मा गान्धी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन चल रहा था। इन सब घटनाओं का चन्द्रसिंह पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

सन् १९२१-२३ तक चन्द्रसिंह पश्चिमोत्तर सीमान्त में रहे जहाँ अंग्रेजों तथा पठानों के मध्य युद्ध हो गया था।

अकाल के समय आर्यसमाज ने गढ़वाल की अत्यधिक सहायता की। इस सेवा कार्य को देखकर चन्द्रसिंह काफी प्रभावित हुए और वे १९२० के बाद एक पक्के आर्यसमाजी बन गये। अब चन्द्रसिंह देश में घटित राजनैतिक घटनाओं में रुचि रखने लगे।

सन् १९२९ ई० में महात्मा गान्धी का कुमाऊँ में आगमन हुआ। चन्द्रसिंह उन दिनों छुट्टी पर थे। वह गान्धी जी से मिलने बागेश्वर गये और गान्धी जी के हाथ से टोपी लेकर पहनी और उसकी कीमत चुकाने का प्रण किया।

सन् १९३० ई० में देश में नमक-सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ। उस समय चन्द्रसिंह २।१८ गढ़वाल राइफिल्स में हवलदार थे। इस रेजीमेंट की बदली पेशावर में कर दी गयी। पेशावर पहुँचने पर चन्द्रसिंह ने अपना सम्बन्ध राजनैतिक घटनाओं से स्थापित किया। वे पेशावर की छावनी से शहर में आते-जाते थे और वहाँ अखबार पढ़ते एवं जनता की भावनाओं को मालूम कर छावनी पहुँचाते थे। इन सब कार्यों से चन्द्रसिंह का हृदय परिवर्तन हुआ। उनके हृदय में देशभक्ति का बीज अंकुरित होने लगा, परिणामस्वरूप चन्द्रसिंह ने अपने साथियों को जंगल एवं एकान्त स्थानों में ले जाकर बैठकें कर उनमें देशभक्ति के भाव उत्पन्न करना प्रारम्भ कर दिया और निश्चित किया गया कि जिस वक्त कांग्रेस हुक्म दे उसी समय नौकरी छोड़कर अपने घर चले जायेंगे।

अप्रैल १९३० में एक अफसर ने गढ़वाली सैनिकों को पेशावर लाने का उद्देश्य समझाया। स्वयं चन्द्रसिंह गढ़वाली के शब्दों में "२२ अप्रैल, १९३० को अंग्रेज कमाण्डर ने कहा कि पेशावर में ९८ प्रतिशत मुसलमान हैं और २ प्रतिशत हिन्दू हैं। मुसलमान दो प्रतिशत हिन्दुओं को बहुत सताते हैं। रामकृष्ण को गालियाँ देते हैं; गौ की हत्या करते हैं; हिन्दुओं की बहू-बेटियों को उठा ले जाते हैं और हिन्दुओं की दुकानों को घेरे रहते हैं, अतः गढ़वाली पल्टन को हिन्दुओं की रक्षा एवं शहर में शान्ति स्थापित करने को जाना होगा। अगर जरूरत पड़ी तो गोली भी चलानी होगी।"

अंग्रेज अधिकारी (कमाण्डर) के चले जाने के पश्चात् चन्द्रसिंह ने अपने सैनिक साथियों को सही स्थिति के बारे में अवगत कराया कि अंग्रेज अफसर की सभी बातें गलत हैं। वास्तव में यह झगड़ा हिन्दू-मुसलमानों का न होकर, अंग्रेज-काँग्रेस का है। चन्द्रसिंह ने अंग्रेजों की शोषण नीति पर प्रकाश डाल कर काँग्रेस को समझाते हुए कहा, "जब काँग्रेस भाई हमारे देश की आजादी के लिए अंग्रेजों से लड़ रहे हैं, क्या ऐसे समय में हमें उनके ऊपर गोली चलानी चाहिए ? हमारे लिए गोली चलाने से अच्छा यही होगा कि अपने को गोली मार लें। देश के साथ गद्दारी करना अपने खानदान का सर्वनाश करना है।"

२२ अप्रैल को गढ़वाली सैनिकों को आदेश मिला कि उन्हें कल (२३ अप्रैल) पेशावर जाना होगा। चन्द्रसिंह ने तत्काल पाँचों कम्पनियों के पाँच प्रमुख व्यक्तियों को बुलाया और उनके साथ विचार-विमर्श से गोली न चलाने की योजना पास हो गयी।

२३ अप्रैल, १९३० की सुबह कप्तान रिकेट ७२ गढ़वाली सैनिकों को लेकर पेशावर में किस्साखानी बाजार पहुँच गये। किसी व्यक्ति द्वारा शिकायत किये जाने पर चन्द्रसिंह पर सन्देह हो जाने के कारण कप्तान रिकेट उन्हें शहर में नहीं ले गये। इससे पेशावर पहुँचने वाले गढ़वाली सैनिकों के चेहरों पर उदासी छा गयी। चन्द्रसिंह ने दूसरे अधिकारी से पेशावर में पहुँची सेना के लिए पानी ले जाने की आज्ञा माँगी। उन्हें चन्द्र की योजना के विषय में कुछ पता नहीं था अतः उन्होंने चन्द्रसिंह को पानी ले जाने की आज्ञा दे दी। वे पानी लेकर पेशावर के शहर में अपने गढ़वाली साथियों के पास पहुँच गये। वहाँ राष्ट्रीय ध्वज फहर रहा था और काँग्रेस का जलसा हो रहा था। केप्टेन रिकेट ने क्रोधित होकर चेतावनी दी, "तुम लोग भाग जाओ नहीं तो गोलियों से भून दिये जाओगे।" एक भी पठान अपनी जगह से नहीं हटा। तब रिकेट ने हुक्म दिया, "गढ़वाली थ्री राउण्ड फायर", अर्थात् गढ़वाली तीन राउण्ड गोली चलाओ। हवलदार चन्द्रसिंह रिकेट की बायीं ओर खड़े थे। उन्होंने रिकेट के हुक्म के तुरन्त बाद हुक्म दिया, "गढ़वाली सीज फायर" अर्थात् गढ़वाली गोली मत चलाओ। सैनिकों ने चन्द्रसिंह का ही हुक्म माना और जुलूस की ओर बन्दूकें नीचे जमीन पर खड़ी कर दीं। चन्द्रसिंह ने रिकेट से कहा--"हम निहत्थों पर गोली नहीं चलाते।" इसके पश्चात् गोरी सेना पेशावर बुलाकर गोली चलवायी गयी।

तत्पश्चात् गढ़वाली सैनिकों को छावनी में लाया गया और चन्द्रसिंह से अंग्रेज अधिकारियों ने बगावत का कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया--"हम हिन्दुस्तानी सिपाही हिन्दुस्तान की हिफाजत के लिए भरती हुए हैं, न कि

अपने भाइयों पर गोली चलाने के लिए। यह तो सच्चे सिपाहियों का कर्तव्य नहीं कि जनता पर गोली चलाये। आप लोग अपने गोरे सिपाहियों के मुकाबले, हम लोगों को कुत्ते से भी बदतर समझते हैं। हमारे सूबेदार, जमादार आपके एक मामूली गोरे को सलाम करते हैं। आपके एक गोरे को ६० रु० माहवार वेतन मिलता है, हमारे सिपाहियों को सिर्फ १६ रु० माहवार।"

दूसरे दिन २४ अप्रैल, १९३० ई० को सुबह सभी गढ़वाली ओहदेदारों को बुलाकर अंग्रेज अधिकारी ने कहा—"आज तुम्हें फिर शहर जाना होगा और गोली चलानी होगी। जनरल साहब का हुक्म है कि जो सिपाही गोली चलाने से इनकार करेगा उसे वहीं पर गोली मार दी जायेगी।" इस आदेश की चन्द्रसिंह पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने गढ़वाली सैनिकों को समझाया, "आपको याद है कि गोरखा बटालियन ने जलियाँवाला बाग में निहत्थी जनता पर गोली चलायी थी। आज तक लोग उसके नाम पर थूकते हैं। मालावार में १।१८ रॉयल गढ़वाल राइफिल्स ने मोपलों पर जुल्म किया था। आपने देखा होगा कि मोपला डॉक्टर गढ़वालियों को कैसी बुरी निगाह से देखते हैं। हम अपनी यह दशा नहीं होने देंगे और हम ८०० गढ़वाली काँग्रेस के नाम पर पेशावर में अपना जीवन न्यौछावर कर अमर हो जायेंगे।" सब वीर गढ़वाली सैनिकों ने गायत्री मंत्र पढ़कर और अपनी चुटिया हाथ में लेकर शहर न जाने की कसम खाई। ब्रिटिश सरकार की आज्ञा का उल्लंघन किया गया और कोई भी गढ़वाली सैनिक उस दिन पेशावर नहीं गया। अब अंग्रेज समझ गये कि गढ़वाली सैनिक हमारे लिए नहीं लड़ेंगे अतः उन्हें हथियार जमा कर देने का आदेश दिया गया, लेकिन उन्होंने हथियार जमा करने से भी इनकार कर दिया। कुछ सैनिकों ने ब्रिगेडियर की ओर संगीनें तान दीं। बाद में उनके नेता चन्द्रसिंह ने सैनिकों को अंग्रेजों की असीमित शक्ति से अवगत कराते हुए कहा कि हमें हथियार क्वार्टर गार्ड में जमा कर देने चाहिए। यद्यपि पहली बार तो गढ़वाली सैनिकों ने चन्द्रसिंह की आज्ञा की अवहेलना कर दी परन्तु बाद में अन्य गढ़वाली सैनिक नेताओं के समझाने पर उन्होंने हथियार जमा कर दिये। इसके बाद साठ गढ़वालियों पर बगावत का आरोप लगाया गया। सारी बटालियन एवटाबाद में नजरबन्द कर दी। इसके बाद उन पर अभियोग चलाया गया। मुकन्दीलाल बैरिस्टर को गढ़वालियों की ओर से पैरवी के लिए बुलाया गया जिसके फलस्वरूप ६ ओहदेदारों को सजा देकर बाकी सिपाही छोड़ दिये गये।

बैरिस्टर मुकन्दीलाल का विचार है कि कमांडर-इन-चीफ स्वयं चाहते थे कि संसार को यह पता न लगे कि भारतीय सेना अंग्रेजों के विरुद्ध हो गयी है, इस-

लिए उन्होंने मेरी ओर ध्यान न देकर चन्द्रसिंह को मौत की सजा की जगह पर आजन्म कारावास की सजा दी। बाकी लोगों को आठ वर्ष से दो वर्ष तक के कारावास का दण्ड दिया गया परन्तु सभी सजा प्राप्त सिपाही पूरी सजा की अवधि से पूर्व ही छूट गये ।

१२ जून, १९३० ई० की रात को चन्द्रसिंह एवटाबाद जेल में भेज दिये गये। चन्द्रसिंह नाना जेलों में यातनाएँ सहते रहे। नैनी जेल में उनकी भेंट क्रान्तिकारी राजबन्दियों के साथ हुई। लखनऊ जेल में उनकी भेंट सुभाषचन्द्र बोस से हुई। चन्द्रसिंह एक निर्भीक देशभक्त था जो बेड़ियों को 'मर्दों का जेवर' कहता था। उनका कहना था कि जब मौत अवश्यम्भावी है तो उससे डरना मूर्खता मात्र है।

ग्यारह वर्ष से अधिक की अवधि तक अनेक जेलों में यातनाओं का दृढ़ता से मुकाबला करते हुए २६ सितम्बर, १९४१ ई० में जेल से रिहा हुए। कुछ समय आनन्द भवन में रहने के पश्चात् १९४२ ई० में चन्द्रसिंह अपने बच्चों सहित वर्धा आश्रम में कुछ समय रहे। जुलाई १९४२ ई० में चन्द्रसिंह इलाहाबाद चले गये। अगस्त में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन चला, जिसमें नवयुवकों ने सक्रिय भाग लिया। इलाहाबाद में उत्साही नवयुवकों ने उन्हें अपना कमाण्डर-इन-चीफ नियुक्त किया और डॉ० गैरोला को डिक्टेटर बनाया गया। चन्द्रसिंह का मुख्य कार्य १९४२ ई० में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई के लिए युवकों का प्रशिक्षण एवं नेतृत्व करना था। आन्दोलन के दौरान चन्द्रसिंह फिर पकड़े गये और ६ अक्टूबर, १९४२ ई० को उन्हें सात साल की सजा एवं दो सौ रुपये जुर्माने की सजा हुई और नाना जेलों में यातनाएँ सहते सात वर्ष की जगह १९४५ में ही जेल से छोड़ दिये गये, लेकिन उनके गढ़वाल प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया। चन्द्रसिंह का क्रान्तिकारी यशपाल से जेल में परिचय हो गया था, अतः जेल से छूटने के पश्चात् कुछ दिन वे यशपाल के साथ लखनऊ रहे और तत्पश्चात् अपने बच्चों से मिलने हल्द्वानी आये।

चन्द्रसिंह गढ़वाली पर कम्युनिस्ट विचारधारा का व्यापक प्रभाव था और वे १९४४ के बाद एक पक्के कम्युनिस्ट कार्यकर्ता के रूप में सामने आये। कम्युनिस्ट विचारधारा का प्रचार करने के लिए उन्होंने देश के विभिन्न स्थानों की यात्रा की।

सन् १९४६ ई० की गर्मियों में प्रादेशिक पार्टी के आदेश पर चन्द्रसिंह रानीखेत आये और ताड़ीखेत में रहने लगे। उस समय रानीखेत में अनाज का अभाव व्याप्त था। चन्द्रसिंह ने वहाँ की स्थानीय जनता को संगठित कर अन्न प्राप्ति के लिए आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। एक दिन (१९४६) चन्द्रसिंह ने जनता के संगठित एवं सुव्यवस्थित जुलूस का नेतृत्व करते हुए अनाज के गोदाम का ताला

तोड़ दिया और अन्न के अभाव से पीड़ित लोगों से पैसे जमाकर उन्हें अन्न का वितरण प्रारम्भ कर दिया। इस पर एस० डी० ओ० पुलिस सहित घटना स्थल पर पहुँचे और उन्होंने चन्द्रसिंह से अन्न की समस्या के बारे में बातचीत की जिसका परिणाम यह हुआ कि सरकार ने अन्न की समस्याओं को हल करने के लिए 'अन्न परामर्श समिति' गठित की और चन्द्रसिंह उसके अध्यक्ष बनाये गये। अतः जनसाधारण की अन्न समस्या का समाधान हो गया।

रानीखेत की अन्न समस्या का समाधान तो हो गया परन्तु रानीखेत की दूसरी भीषण समस्या पानी की रही अतः चन्द्रसिंह ने अब पानी की समस्या से निपटना चाहा। उन्होंने रानीखेत के बाजार से बासठ कनस्टरों को जमाकर भवाली से पानी भराकर स्वयं जनता में वितरित करवाया। इस प्रकार रानीखेत की पानी की समस्या पर भी चन्द्रसिंह ने विजय प्राप्त कर ली।

इसके पश्चात् उनके गढ़वाल-प्रवेश-निषेध की अवधि समाप्त हो गयी, अतः दिसम्बर १९४६ ई० को चन्द्रसिंह ने गढ़वाल में प्रवेश किया, जहाँ स्थान-स्थान पर जनता ने स्वागत किया।

कुछ दिन गढ़वाल में भ्रमण करने के पश्चात् लुधियाना किसान काँफ्रेंस में भाग लिया और उसके बाद लाहौर आये। दोनों जगह चन्द्रसिंह का भारी स्वागत हुआ।

सन् १९४६ से ही टिहरी रियासत के विरुद्ध जब आन्दोलन निरन्तर विकास कर रहा था, चन्द्रसिंह ने भी टिहरी आन्दोलन की ओर अपनी निगाहें डालीं और जनवरी १९४८ ई० में नागेन्द्र सकलानी के शहीद हो जाने के पश्चात् उन्होंने टिहरी आन्दोलन का नेतृत्व किया।

कम्युनिस्ट विचारधारा के होने के कारण स्वतन्त्रता के बाद भी भारत सरकार उनसे शंकित रहती थी। सरकार को सन्देह हो गया कि चन्द्रसिंह गढ़वाली, जिला बोर्ड के चेयरमैन के लिए चुनाव लड़ना चाहते हैं, अतः उन्हें पेशावर काण्ड का सजायाफ्ता होने का आरोप लगाकर गिरफ्तार कर लिया गया। कुछ महीनों तक सजा प्राप्त करने के बाद उन्हें जेल से मुक्त कर दिया। इसी समय शराब और टिंचरी के प्रयोग से गढ़वाल के समाज में भारी बुराइयाँ व्याप्त थीं। चन्द्रसिंह ने लोगों को संगठित कर शराब व टिंचरी के विरुद्ध आन्दोलन किया और उन्हें काफी सफलता मिली।

सन् १९५१-५२ ई० में चन्द्रसिंह पौड़ी-चमोली निर्वाचन क्षेत्र से कम्युनिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़े। लेकिन गढ़वाली जनता काँग्रेस समर्थक होने के कारण उन्हें चुनाव में सफलता नहीं मिल पाई। चन्द्रसिंह ने पेशावर और उसमें सफलता प्राप्त की।

स्वतन्त्रता के बाद चन्द्रसिंह गढ़वाली ने उत्तराखण्ड के विकास की योजनाओं के लिए आवाज उठाई। चन्द्रसिंह गढ़वाली को दूधातोली नामक रमणीक स्थान अत्यधिक प्रिय है। उन्होंने वहाँ पर उत्तराखण्ड विश्वविद्यालय के निर्माण हेतु सरकार को कई बार सुझाव दिये, परन्तु कुमाऊँ-गढ़वाल की जनता में व्याप्त आपसी संघर्ष के कारण उनकी योजना सफल न हो सकी; फिर भी सरकार ने उनके अनुरोध पर वहाँ हेलीकोप्टर के उतरने के लिए एक हेलीपेड का निर्माण करवा दिया है। उनकी इच्छानुसार मरणोपरान्त उनकी समाधि हेतु स्थान के लिए छह फीट भूमि वन विभाग द्वारा स्वीकृत हो चुकी है। उन्होंने रामनगर से गढ़वाल तक रेलवे लाइन के निर्माण का सुझाव भी सरकार को दिया है।

चन्द्रसिंह गढ़वाली में एक सेनानायक के सभी गुण विद्यमान थे। उनका जीवन संघर्षमय रहा। उन्होंने देश सेवा एवं समाज सेवा का कार्य बड़ी कर्तव्य-परायणता के साथ निभाया। महात्मा गान्धी चन्द्रसिंह की देशभक्ति, बहादुरी, स्वावलम्बन तथा स्वामिभक्ति आदि गुणोंसे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा, "मुझे एक चन्द्रसिंह और मिलता तो भारत कभी का स्वतन्त्र हो गया होता।" आजाद हिन्द फौज के जनरल मोहनसिंह का कथन है कि चन्द्रसिंह गढ़वाली के पेशावर सैनिक विद्रोह ने हमें आजाद हिन्द फौज को संगठित करने की प्रेरणा दी है।

बैरिस्टर मुकन्दीलाल के शब्दों में "चन्द्रसिंह एक महान् पुरुष है। आजाद हिन्द फौज का बीज बोने वाला वही है। पेशावर कांड का नतीजा यह हुआ कि अंग्रेज समझ गये कि भारतीय सेना में यह विचार गढ़वाली सिपाहियों ने ही पहले पहल पैदा किया कि विदेशियों के लिए अपने खिलाफ नहीं लड़ना चाहिए।

"यह बीज जो हवलदार चन्द्रसिंह ने १९३० ई०में पेशावर में बोया था, उसका परिणाम १९४२ में सिंगापुर में हुआ। तीन हजार गढ़वाली सिपाही और अच्छे-अच्छे गढ़वाली अफसरों ने देशभक्त नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज में भर्ती होने का निश्चय किया और विदेशी शासकों के इरादे से वह मनीपुर के समीप आ गये थे। बीस हजार भारतीय सिपाही जो जापानियों के कैदी बने थे, उनमें से तीन हजार गढ़वाली सैनिक थे जिन्होंने हिन्दुस्तान को आजाद कराने का बीड़ा उठाया था।"

राहुल सांस्कृत्यायन के अनुसार "पेशावर का विद्रोह, विद्रोहों की एक शृंखला पैदा करता है जिसका भारत को आजाद करने में भारी हाथ है। वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली इसी पेशावर-विद्रोह के नेता और जनक थे।"
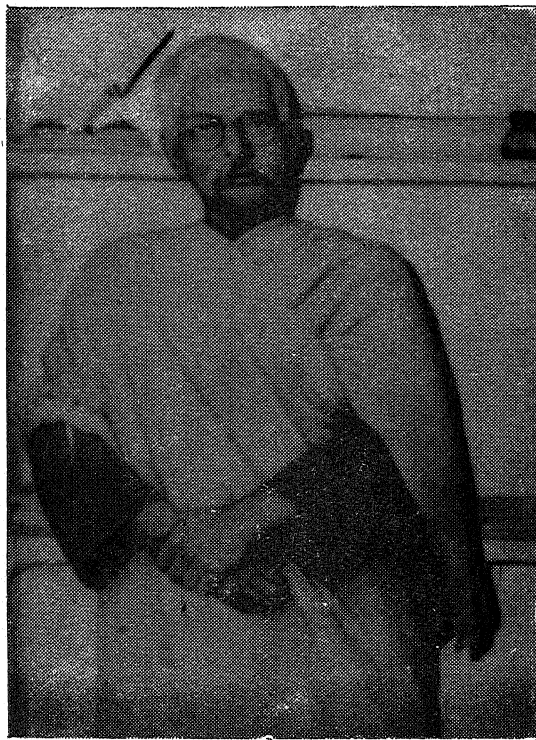
अहिन्दी-भाषी हिन्दी-सेवक

आचार्य नरदेव शास्त्री

हमारे युवक देश की प्रगति से भी सर्वथा परिचित रहें। इस संस्था में नरदेव शास्त्री भी सम्मिलित हुए।

सन् १६०८ में आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध संन्यासी तार्किक शिरोमणि स्वर्गीय दर्शनानन्द सरस्वती ने ऐसे गुरुकुल की स्थापना की थी, जिसमें प्रत्येक वर्ग, जाति और समाज के बालकों को संस्कृत साहित्य और उसके वेद, उपनिषद्, दर्शन तथा धर्मशास्त्र आदि उपांगों की वैदिक दृष्टिकोण से निशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती थी। ज्वालापुर महाविद्यालय का उद्देश्य प्राचीन ऋषि-परम्परा के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करना था। इसी समय स्वामी श्रद्धानन्द और गुरुकुल कांगड़ी के कुछ अध्यापकों में पाठ्यक्रम निर्धारित करने के विषय में मतभेद उत्पन्न हो गया था। कहा जाता है कि स्वामी श्रद्धानन्द पाठ्यक्रम में संस्कृत भाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी आदि विषयों को भी रखना चाहते थे, जबकि नरदेव शास्त्री और उनके साथी इस विद्यालय को विशुद्ध संस्कृत विद्यालय का रूप देना चाहते थे। इसी से मतभेद बढ़ा और प्रसिद्ध विद्वान् नरदेव शास्त्री, पण्डित भीमसेन शर्मा, गणपति शर्मा, गंगादत्त और पद्मसिंह शर्मा गुरुकुल कांगड़ी छोड़कर गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में आ गये। इस संस्था में नरदेव शास्त्री ने अन्त तक विभिन्न पदों पर कार्य किया। उन्होंने इस संस्था में मंत्री, मुख्याधिष्ठाता, आचार्य, कुलपति आदि पदों पर अवैतनिक रूप से कार्य किया। नरदेव शास्त्री अपने जीवन के प्रति अनासक्त रहते थे। वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे। उनकी आवश्यकताएँ अत्यधिक सीमित थीं। एक जोड़ी कपड़ों और कुछ पुस्तकों के अतिरिक्त उनकी कोई सम्पत्ति नहीं थी।

नरदेव शास्त्री मात्र कठमुल्ला प्रकृति के आर्यसमाजी अध्यापक नहीं थे, प्रत्युत् अपनी कर्मठता से उन्होंने सम्पूर्ण उत्तराखण्ड के सामाजिक जन-जीवन में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था। जहाँ उन्होंने गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में आचार्य के पद पर कार्य करते हुए अनेक विषयों के पारंगत विद्वान् स्नातक देश को दिये, वहाँ राजनीति के क्षेत्र में भी वे किसी से पीछे नहीं रहे। गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर देहरादून के समीप होने के कारण नरदेव शास्त्री वहाँ जाते रहते थे। उन्होंने भोगपुर नामक ग्राम को अपने निवास-स्थान के रूप में चुना और देहरादून की सामाजिक एवं राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेने लगे। उन्होंने गढ़वाल और देहरादून की जनता में स्वतंत्रता-संग्राम की अलख जगाई। उन्हें गढ़वाल और देहरादून का 'बेताज का बादशाह' कहा जा सकता है।

सन् १६२० में देहरादून में प्रथम राजनैतिक सम्मेलन हुआ, जिसमें नरदेव

शास्त्री को स्वागताध्यक्ष चुना गया। सन् १९२१ में देश भर में असहयोग आन्दोलन ने जोर पकड़ा। देहरादून में इस आन्दोलन का नेतृत्व नरदेव शास्त्री ने किया। सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर जेल में बन्द कर दिया। वे देहरादून की जनता में काफी प्रिय थे, जिससे सरकारी कर्मचारियों का भयभीत होना स्वाभाविक था, अतः उन्होंने नरदेव शास्त्री को देहरादून जेल से हटाकर मुरादाबाद जेल में बन्द कर दिया। असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के परिणामस्वरूप उन्हें दो सौ रुपये का आर्थिक दण्ड मिला तथा पन्द्रह महीनों तक जेल की यातनाएँ सहनी पड़ीं। सन् १९२३ में जब वे जेल से रिहा हुए तो वृहद् जन-समूह ने बड़ी धूम-धाम के साथ उनका स्वागत किया।

सन् १९२१ में अहमदाबाद में कांग्रेस का अधिवेशन सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन के प्रवेश द्वार पर सम्पूर्ण देश के जिन सत्याग्रहियों के नाम अंकित किये गये थे, उनमें सर्वप्रथम नाम नरदेव शास्त्री का ही था।

सन् १९३० में नमक-सत्याग्रह ने जोर पकड़ा। देहरादून जिले में नरदेव शास्त्री को नमक-सत्याग्रह का प्रथम डिक्टेटर चुना गया और उन्होंने पूरी निष्ठापूर्वक जनता का सफल नेतृत्व किया। इस आन्दोलन में एक सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में भाग लेने के कारण सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और उन्हें छः माह के कारावास की सजा दी गई।

सन् १९३२ में देहरादून में शराब की भट्टियों पर धरना देने का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिसमें नरदेव शास्त्री ने भी महत्वपूर्ण भाग लिया और गिरफ्तार किये जाने पर उन्हें छः माह की सजा तथा पचास रुपये का आर्थिक दण्ड दिया गया। जुर्माना न देने पर पैंतालीस दिनों की अतिरिक्त सजा दी गई।

सन् १९४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह और सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भी नरदेव शास्त्री ने सक्रिय भाग लिया, फलतः उन्हें दोनों आन्दोलनों में गिरफ्तार किया गया और उन्हें जेल की यातनाएँ सहनी पड़ीं।

नरदेव शास्त्री ने अपना राजनैतिक क्षेत्र केवल देहरादून तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु उन्होंने ब्रिटिश गढ़वाल के अनेक स्थानों की महत्वपूर्ण यात्राएँ कीं। यह उनकी निस्स्वार्थ सेवाओं और कर्मठ जीवन का ही प्रमाण है कि वहाँ के गाँव-गाँव में नरदेव शास्त्री का नाम एक देवता के रूप में याद किया जाता है। देश की स्वतन्त्रता के लिए चलाए गए सभी आन्दोलनों में उन्होंने इस प्रदेश का सही नेतृत्व किया। उन्होंने सन् १९३१ में यमकेश्वर राजनीतिक सम्मेलन (अजमेर पट्टी, गढ़वाल) का सभापतित्व किया। यह सम्मेलन काफी सफल रहा तथा दूर-दूर से पहाड़ी क्षेत्रों से आकर लगभग छः हजार व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया।

सभा-विसर्जन के पश्चात् नरदेव शास्त्री के नेतृत्व में अनेक कार्यकर्ताओं ने पैदल यात्रा कर डाण्डामण्डी, कोटद्वार आदि प्रमुख बाजारों तथा गाँवों में सभाएँ आयोजित कर जनसाधारण में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार किया। इन सभाओं में उत्सुक गढ़वालियों के झुण्ड के झुण्ड आते थे। नरदेव शास्त्री ने अपने प्रभावशाली भाषणों से गढ़वालियों में एक नये जीवन का संचार किया जिनमें से एक भाषण का कुछ अंश इस प्रकार है—"गढ़वाल अर्थ-दरिद्र है पर धीर-दरिद्र नहीं, इसीलिए जीवित है। गढ़वाल भूलों का प्रायश्चित्त करना चाहता है। यह शुभ लक्षण है। गढ़वाल में परस्पर विरोधी बहुत गुण हैं—ये वीर भी हैं और भीरु भी हैं। वीर इसलिए कि समझ में आ जाय तो प्राण तक समर्पण करने को तैयार। अपने स्वरूप को न समझने के कारण लोग अज्ञान में हैं और डरते हैं। गढ़वाल बहुत शीतल और बहुत गर्म भी है; यही गुण गढ़वालियों में भी आ गया है। वे या तो एकदम गर्म होंगे या हिमालय की तरह ठण्डे होकर अपनी जगह पर ही गल जायँगे। गढ़वाल को मध्यम रेखा पर चलना अभी नहीं आया है, पर वह मध्यम रेखा पर आरूढ़ होकर समझने लग गया है—गढ़वाल अब अपनी सुरक्षा के लिए उच्च पर्वत-मालाओं और दुर्गम घाटियों पर भरोसा न रखे। यदि वह सुरक्षित रहना चाहता है तो संगठित होवे।"[२]

देहरादून और ऋषिकेश नरदेव शास्त्री के राष्ट्रीय जीवन की कर्मभूमि रहे हैं। वर्तमान समय में जितने भी राजनीतिक नेता इस क्षेत्र में उत्कर्ष पर हैं वे सभी शास्त्री जी से प्रभावित रहे हैं। लगभग पच्चीस वर्षों तक शास्त्री जी अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के सदस्य रहे। स्वतन्त्रता के पश्चात् वे कई वर्षों तक उत्तर प्रदेश विधान सभा के एक सक्रिय सदस्य रहे। इस काल में उन्होंने गौवध के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने यह राय भी दी थी कि शासन की सुव्यवस्था के लिए उत्तर प्रदेश जैसे बड़े प्रान्त को दो भागों में विभाजित किया जाना चाहिए।

नरदेव शास्त्री में एक पत्रकार के गुण थे। वे 'भारतोदय' और मुरादाबाद से प्रकाशित होने वाले 'शंकर' नामक मासिक पत्र के सम्पादक रहे। नरदेव शास्त्री एक अच्छे पत्रकार होने के साथ-साथ उच्चकोटि के लेखक और विचारक भी थे। तत्कालीन सरस्वती, चाँद, वीणा, माधुरी आदि पत्र-पत्रिकाओं में शास्त्री जी की रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। उन्होंने 'आत्मकथा या आपबीती-जगबीती' नाम से अपनी एक विस्तृत आत्मकथा लिखी है, जो न केवल उनकी जीवनी को ही हमारे सामने प्रस्तुत करती है, बल्कि उससे पाँच-छः दशकों की साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक प्रवृत्तियों पर भी प्रकाश पड़ता

है। उन्हे कई बार अखिल भारतीय हिन्दी सम्मेलन का स्वागताध्यक्ष और अध्यक्ष बनाया गया।

नरदेव शास्त्री के प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रभावित होकर देश के नेता, महापुरुष, शिक्षा-शास्त्री, साहित्यकार और पत्रकार गुरुकुल ज्वालापुर में आये। राजनीति, साहित्य और धर्म की 'त्रिवेणी' यदि किसी व्यक्ति के जीवन में अवतरित हुई थी तो वे आचार्य नरदेव शास्त्री ही थे। वे साहित्य सम्मेलन और राष्ट्रीय महासभा काँग्रेस के लगभग प्रत्येक अधिवेशन में सम्मिलित होते थे।

यद्यपि नरदेव शास्त्री बीसवीं शताब्दी के व्यक्ति थे, किन्तु उनका आकर्षक व्यक्तित्व उस पुरातन ऋषि-परम्परा के आदर्श की याद दिलाता था, जिसमें शिष्य-समुदाय पेड़ों के नीचे बैठकर अध्ययन करके अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार गुरु के श्रीचरणों में दक्षिणा भेंट किया करता था। प्रत्येक वर्ष 'व्यास पूर्णिमा' के दिन उनकी शिष्य-परम्परा का उज्ज्वल उदाहरण देखने को मिलता था, जबकि देश के कोने-कोने में फैले हुए उनके शिष्य अपनी श्रद्धा, शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार आचार्य के श्रीचरणों में अपनी श्रद्धा के पुष्प अर्पित करते थे।

नरदेव शास्त्री एक स्वावलम्बी व्यक्ति थे। वे स्वयं में इतने निस्पृह, आत्म-विश्वासी और कर्मठ थे कि स्वयं ही काम में जुट जाते थे और बाद में देखते थे कि उनके पीछे एक अपार जन-समुदाय उमड़ा चला आ रहा है। २४ सितम्बर, १९६२ ई० को बयासी वर्ष की अवस्था में साहित्यक, राजनीतिक, शैक्षणिक, धार्मिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में ख्याति अर्जित करने वाले इस महापुरुष का देहावसान हो गया।

इस प्रकार उत्तराखण्ड के स्वतन्त्रता-संग्राम में नरदेव शास्त्री के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। हैदराबाद के निवासी होते हुए भी उन्होंने इस पर्वतीय क्षेत्र को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाया।

काली कुमाऊँ का शेर हर्षदेव ओली (१८६०--१६४० ई०)

"कुमाऊँ में कृषि के अतिरिक्त अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धों की बहुत आवश्यकता है। उन्हीं से देश की दीनता दूर हो सकती है। हम परमुखापेक्षी होकर अपनी राष्ट्रीयता को यथावत् नहीं रख सकते। स्वराज्य से हमें तब तक कोई लाभ नहीं, जब तक हम स्वावलम्बी न बन सकें। राजनैतिक स्वतन्त्रता बिना आत्मपोषी बने हुए इन्द्रायणी के फल-सी लटकती रहेगी।"

हर्षदेव ओली का जन्म ४ मार्च, १८६० ई० में चम्पावत तहसील के गोसनी (खेतीखान) नामक ग्राम में एक साधारण परिवार में हुआ था। इनके पिताजी का नाम कृष्णानन्द ओली था। पिता की निर्धनता के कारण इनकी शिक्षा की सुव्यवस्था न हो सकी। जब ओली जी की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी, तब इनके पिता की मृत्यु हो गयी, लेकिन इन्होंने चुनौतियों का दृढ़तापूर्वक मुकाबला करते हुए अपनी प्रारम्भिक शिक्षा को जारी रखा। प्राथमिक शिक्षा खेतीखान मिडिल स्कूल से प्राप्त की, लेकिन आर्थिक स्थिति की गम्भीरता के कारण इनके अध्ययन में व्यवधान पड़ा, अतः हर्षदेव खेतीखान से लगभग तीन मील दूर, विवेकानन्द द्वारा स्थापित विश्वविख्यात मायावती आश्रम में चले गये और वहाँ से प्रकाशित होने वाले पत्र 'प्रबुद्ध भारत' के छापेखाने में कार्य करने लगे। वहाँ बंगाली आश्रमवासियों के सम्पर्क में आने से उन्होंने अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसके बाद हर्षदेव ने पुनः पढ़ने का निश्चय किया और रामजे हाईस्कूल, अल्मोड़ा में प्रवेश लिया। मायावती आश्रम से आध्यात्मिक दर्शन का भी ज्ञान प्राप्त किया। रामजे हाईस्कूल से आठवीं तथा नवीं कक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। उसी समय देश में बंग-भंग आन्दोलन ने उग्र रूप दिखाया। देशभक्त हर्षदेव ओली बिना उससे प्रभावित हुए कैसे रह सकते थे, अतः वे विद्यालय छोड़कर इलाहाबाद चले गये। इलाहाबाद में इनकी भेंट मोतीलाल नेहरू से हुई। मोतीलाल नेहरू को उनका प्रथम राजनैतिक गुरु व अभिभावक माना जाता है। 'इण्डिपेण्डेण्ट'

पत्र के सम्पादक मोतीलाल नेहरू ने हर्षदेव ओली को इसी पत्र का सहायक सम्पादक नियुक्त किया।

सन् १९१४ ई० में हर्षदेव ओली लखनऊ आई० डी० टी० प्रेस में प्रबन्ध-निदेशक नियुक्त हुए और उन्होंने वहाँ लगन से कार्य किया। वे पराधीनता एवं अंग्रेजों की नीति के घोर विरोधी थे। उनकी राष्ट्रीय भावनाओं से प्रभावित होकर मोतीलाल नेहरू ने उन्हें कुमाऊँ को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाने की सलाह दी, अतः ओली जी ने कुमाऊँ को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर, गाँव-गाँव में दौरा कर, स्वदेशी प्रचार, विदेशी बहिष्कार का कार्यक्रम बनाया। उन्होंने काँग्रेस की नीतियों एवं लक्ष्यों को जनता के सम्मुख रखा एवं अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति से जनता को अवगत कराया।

सन् १९२३ ई० में कुमाऊँ में जंगलात सत्याग्रह चला, जिसमें हर्षदेव ओली ने महत्वपूर्ण भाग लिया; फलस्वरूप उन्हें कारावास की सजा हुई। इसके बाद हर्षदेव ने अपना ध्यान रचनात्मक कार्यों एवं समाज-सुधार की ओर अग्रसर किया। पिथौरागढ़ जनपद के ग्राम लेलू, चौपखिया, सिंचौड़, नैनी, नैकिना; काली कुमाऊँ के ग्राम खिलपती, गुमदेश, रौलगाँव आदि में नायक जाति के लोग रहते थे। इन लोगों में अपनी कन्याओं से वेश्यावृत्ति कराने की परम्परा थी। कुमाऊँ के नेताओं ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई और इस सामाजिक कलंक को समाप्त कर दिया। नायक प्रथा को समाप्त करने में हर्षदेव ओली का विशेष योगदान रहा।

सन् १९३० ई० में नमक-सत्याग्रह चला। कुमाऊँ में काफी प्रयास के उपरान्त भी नमक उपलब्ध न होने के कारण, यहाँ के निवासियों ने नमक-सत्याग्रह के स्थान पर कई स्थानों पर जंगलात के कष्टों के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इस पर सरकार ने दमन नीति का आश्रय लिया। दमन के लिए आरक्षित पुलिस बुलायी गयी, किन्तु वह जनता की स्वतन्त्रता की भावनाओं को दबाने में असफल रही। काली कुमाऊँ में आन्दोलन का नेतृत्व हर्षदेव ओली कर रहे थे, अतः उनके नाम गिरफ्तारी का वारण्ट कटा। सन् १९३० तक हर्षदेव ओली काफी लोकप्रियता अर्जित कर चुके थे। जनता उनके लिए सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर रहती थी। ऐसी परिस्थिति में जनता के डर से पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने के कई असफल प्रयास कर चुकी थी।

९ अगस्त, १९३० ई० को हर्षदेव ओली ने वृहत् जनसमूह के साथ देवीधूरा के विख्यात मेले में प्रवेश किया। मेले में पहुँचते ही विशाल जनसमूह उनके सम्मान में उमड़ पड़ा। ओली जी ने मेले में एक प्रभावशाली भाषण दिया,

जिसमें जनसाधारण को अंग्रजों की साम्राज्यवादी नीति एवं कांग्रेस के स्वतन्त्रता प्राप्ति के उद्देश्यों से परिचित करवाया था। तत्काल जिला हाकिम को आदेश मिला कि हर्षदेव ओली को मेले में ही गिरफ्तार किया जाय, लेकिन उन्हें मेले में गिरफ्तार नहीं किया जा सका, अतः १२ अगस्त को एक सरकारी अधिकारी ने पुलिस सहित उनके गाँव में प्रवेश किया तब इन्होंने स्वयं ही गिरफ्तार हो जाना उचित समझा। ज्योंही उनकी गिरफ्तारी की सूचना जनता को मिली, त्योंही एक विशाल जनसमूह (लगभग ८००० व्यक्ति) उन्हें पुलिस से छुड़ाने के लिए उनके पीछे चम्पावत तहसील तक पहुँचा। रास्ते में वृहत् जनसमूह उत्तेजित होकर पुलिस पर आक्रमण करने के लिए तत्पर हो गया, परन्तु हर्षदेव ओली ने अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं भाषणों से जनता को शान्त कर दिया। चम्पावत पहुँच कर हर्षदेव को चम्पावत तहसील के पुराने किले में बन्द करने की योजना बनाई गई। इस पर जनता के क्रोध का ठिकाना न रहा। जनता ने मिट्टी का तेल एवं कपड़े के चिथड़े जमाकर तहसील को जला देने का निश्चय किया। इसकी सूचना ओली जी को मिल गयी तो उन्होंने पुनः एक प्रभावशाली व्याख्यान देकर विध्वंस के लिए तैयार जनता को शान्त किया और कहा—"तहसील हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति है। इसकी क्षति हमारी क्षति है। आप कांग्रेस के लक्ष्यों को सामने रख कर ब्रिटिश सरकार का विरोध करो; हर तरह से देश की सेवा करो। हम सब भारतीय हैं। हमें मिलकर अंग्रेजोंके खिलाफ संघर्ष करना है, अपने खिलाफ नहीं।"

ओली जी के उपर्युक्त भाषण से जनता शान्त हो गयी और वापस अपने घरों को चली गयी। ओली जी को छः माह का कठोर कारावास एवं पाँच सौ रुपये जुर्माना हुआ। जुर्माना न देने के कारण कारावास की अवधि एक वर्ष बढ़ा दी गयी। गान्धी-इर्विन पैक्ट के अनुसार वे १०-३-१६३१ को जेल से मुक्त हुए।

सन् १६३२ ई० में सविनय आन्दोलन के समय हर्षदेव ओली को पुनः गिरफ्तार किया गया। उन्हें छः मास का कठोर कारावास एवं १५० रु० जुर्माना हुआ। इसी समय इनकी वृद्धा माता का देहावसान हो गया, अतः इन्हें पैरोल पर छोड़ा गया। माता के मृत्यु सम्बन्धी क्रिया-कर्मों को पूर्ण करने के पश्चात् इन्हें पुनः जेल में बन्द कर दिया गया।

हर्षदेव ओली का जन-साधारण पर व्यापक प्रभाव था। काली कुमाऊँ में हर्षदेव ओली के नेतृत्व में सविनय आन्दोलन के दिनों कई लोग स्वयंसेवक बन रहे थे। एक वृद्धा औरत का एक ही पुत्र था, अतः वह स्वयंसेवक बनने में झिझक रहा था। बुढ़िया ने अपने पुत्र से कहा—जाओ 'चारधाम एक लाम' अर्थात् चार धामों में जाने से वह पुण्य नहीं मिलता जो एक लड़ाई में जाने से मिलता है। उपरोक्त कथन

से जहाँ एक ओर कुमाऊँ की नारी की वीरता स्पष्ट होती है वहाँ दूसरी ओर हर्षदेव ओली का जन-साधारण पर प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है।

हर्षदेव ओली हिन्दी, कुमाऊँनी एवं अंग्रेजी में धाराप्रवाह भाषण कला में अद्वितीय थे। उनके भाषण तथ्यों एवं आँकड़ों से युक्त होते थे। वे साहसी, निष्ठावान, परिश्रमी और जन सेवार्थ प्राण-प्रण से जुटने वाले व्यक्ति थे। रिश्वत और अन्याय के वे घोर विरोधी थे। जहाँ कहीं पहुँच जाते, अफसरशाही थर-थराने लगती थी। जनहित के कार्यों के प्रति वे हमेशा जागरूक रहते थे। इस सम्बन्ध में एक दिलचस्प घटना उल्लेखनीय है—एक दिन टनकपुर से पीलीभीत को जाने वाली ओ० टी० आर० (अब पूर्वोत्तर रेलवे) चक्रपुर से आगे बढ़ रही थी। चक्रपुर व खटीमा के मध्य एक थारू का भैंसा ट्रेन की चपेट में आकर मर गया। रेलवे गार्ड ने ट्रेन रुकवा कर उस थारू को धमका कर उल्टे उससे ही ५० रुपये जुर्माना माँगने लगा। गरीब थारू थर-थर काँप रहा था और आर्थिक दण्ड देने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए गार्ड से क्षमा माँग रहा था। इसी समय हर्षदेव ओली अपने सफेद घोड़े पर सवार होकर घटना-स्थल पर आ पहुँचे। उन्हें देखकर रेलवे गार्ड की पैरों तले जमीन खिसकने लगी और वह अपने केबिन की ओर मुड़ने लगा तो ओली जी ने उच्च स्वर में उसे रुकने का आदेश दिया और इसी बीच जनसमुदाय से सत्यता का पता लगाया। थारू को निरपराध देखकर उन्होंने गार्ड से १५० रु० भैंसे की कीमत दिलवायी, तब रेलगाड़ी आगे बढ़ी।

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार में हर्षदेव ओली ने महत्वपूर्ण भाग लिया व अपने घर में विदेशी वस्त्रों से भरे दो सन्दूकों को अग्नि की लपटों पर चढ़ा दिया। उन्होंने अनेक भ्रष्ट पदाधिकारियों को पदच्युत कराया। नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार की व्याख्या ओली जी ने निम्न शब्दों में की—'झूठ ही लेना, झूठ ही देना; झूठ ही भोजन अरु झूठ ही चबैना।'

हर्षदेव ओली ने कुली उतार, कुली बेगार व कुली बर्दायश प्रथा को तोड़ने में बद्रीदत्त पाण्डे (कूर्मांचल केसरी) के साथ भाग लिया। तराई-भाबर में थारुओं को जंगलात सम्बन्धी उनके मासूमी हक दिलवाये। गुमदेश की पत्थर की खानें करमुक्त करवायीं। अस्कोट में सत्याग्रह का संचालन करके वहाँ की जनता को रजवाड़ों के अत्याचारों से मुक्त कराया। वे काँग्रेस कमेटी, लोहाघाट के अध्यक्ष तथा कुमाऊँ की जनता में व्याप्त जंगलात के कष्टों के निवारण के लिए गठित फोरेस्ट कमेटी के उपाध्यक्ष और जिला बोर्ड, अल्मोड़ा की शिक्षा समिति के सदस्य थे। अल्मोड़ा में शिक्षा प्रचार एवं लोहाघाट में अस्पताल खोलने में आपका बड़ा हाथ रहा। उनका जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, मैथिलीशरण

गुप्त एवं तत्कालीन समस्त कुमाऊँ एवं गढ़वाल के नेताओं से घनिष्ठ परिचय था। लालबहादुर शास्त्री २-३ दिनों तक उनके घर में रहे थे।

सन् १९४० ई० में हर्षदेव ओली ने नैनीताल जिले में शोषित और उपलब्ध सामाजिक अधिकारों से वंचित थारुओं के बीच काम किया। थारुओं पर हुए अत्याचारों का मामला उन्होंने न्यायालय में पहुँचाने की योजना बनायी। इसी समय १९४० में गोविन्दबल्लभ पन्त से स्वतन्त्रता संग्राम के विषय में मंत्रणा करने नैनीताल आये जहाँ अचानक एक पागल कुत्ते ने उनके पैर में काट लिया और कुछ महीनों में ही उनकी मृत्यु हो गयी।

हर्षदेव ओली एक कुशाग्र बुद्धि के राजनीतिज्ञ तथा सफल पत्रकार, लेखक एवं कवि थे। उनके लेख कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे, लेकिन 'शक्ति' पत्र इनके लेखों का रंगमंच रहा। 'सरस्वती' और 'माधुरी' में भी उनके प्रभावशाली लेख प्रकाशित हुए।

हर्षदेव ओली का मत था कि जब तक सब राष्ट्रीय कार्यकर्ता एक स्वर और भाव से प्रेरित होकर कार्यक्षेत्र में उत्तीर्ण नहीं होंगे, तब तक जनता उनमें विश्वास नहीं करेगी। सच्चा विश्वास ही कार्य की सफलता की कुंजी है।

हर्षदेव ओली ने कुमाऊँ में उद्योग-धन्धों को स्थापित किये जाने पर बल दिया। उन्होंने स्वावलम्बन पर बल दिया और कहा कि जब तक आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं मिलती तब तक राजनैतिक स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं है; जैसा कि उनके निम्न कथन से स्पष्ट हो जाता है—"कुमाऊँ में कृषि के अतिरिक्त अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धों की बहुत आवश्यकता है। उन्हीं से देश की दीनता दूर हो सकती है। हम परमुखापेक्षी होकर अपनी राष्ट्रीयता को यथावत नहीं रख सकते। स्वराज्य से हमें तब तक कोई लाभ नहीं, जब तक हम स्वावलम्बी न बन सकें। राजनैतिक स्वतन्त्रता बिना आत्मपोषी बने हुए इन्द्रायणी के फल-सी लटकती रहेगी।"

स्पष्ट है कि हर्षदेव ओली का जीवन देश-सेवा, अभाव, संघर्ष और राजनैतिक उथल-पुथल में बीता। उन्होंने भारतमाता की स्वतन्त्रता एवं जनसाधारण के कष्टों को दूर करने में अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। एक वक्ता के रूप में उनमें मधुरता, तार्किकता और सामान्य आदमी को प्रभावित करने तथा समझाने की क्षमता थी। वे एक सफल पत्रकार एवं लेखक थे। भ्रष्टाचार से उन्हें स्वाभाविक घृणा थी। वे एक महान् समाज सेवक थे। हर्षदेव ओली को सर्वत्र 'काली कुमाऊँ का बेताज का बादशाह' तथा 'काली कुमाऊँ का शेर' के नाम से जाना जाता है। कुछ लोगों ने उन्हें 'देशभक्ति की ज्वलन्त ज्योति' भी कहा है।

देह से अंग्रेज, मन से भारतीय

सुश्री सरला बहिन

सुश्री सरला बहिन (जन्म १९०१ ई०)

"दलगत राजनीति से दूर सरला बहिन का जीवन समाजसेवी का समर्पित जीवन है। वे सेवा एवं त्याग की मूर्ति हैं। उनके हृदय में मानव-करुणा का अजस्र स्रोत प्रवाहित है। पर्वतीय जनता के दिलों में उनकी वात्सल्य मूर्ति विराजमान है। कुमाऊँ-नियों की वे सच्ची बहिन हैं। उनका यथा नाम तथा गुण हैं। वे देह से अंग्रेज, मन से भारतीय हैं। वे सदा शुद्ध हिन्दी बोलती एवं लिखती हैं। जनता के सामने हिन्दी में धाराप्रवाह से उन्हें बोलते देख-सुन कर उनकी साधना एवं हिन्दी प्रेम का परिचय मिलता है। उनके मुँह से कभी भी अंग्रेजी का शब्द न सुना जाना, तथाकथित अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों के लिये चुनौती है।"

सरला बहिन का जन्म सन् १९०१ में इंग्लैण्ड में हुआ था। इंग्लैंड में उनका नाम मिस कैथरिन मैरी हैलीमन था। उनके पिता का नाम मि० ओ० जी० हैलीमन था। मिस हैलीमन के पिता मूलत: स्विस-जर्मन थे और एक अंग्रेज महिला से विवाह करके इंग्लैण्ड में बस गये थे। सन् १९१४ में प्रथम विश्व युद्ध के समय जन्म-स्थान के प्रमाण-पत्र के अभाव में मिस हैलीमन को जर्मन समझ कर नजर-बन्द कर लिया गया। पारिवारिक आर्थिक विषमता के कारण उन्हें केवल सोलह वर्ष की अवस्था में नौकरी करनी पड़ी। मिस हैलीमन में बचपन से ही एक समाजसेविका के सभी गुण विद्यमान थे। उन्होंने अपनी किशोरावस्था में ही निश्चय कर लिया था कि वे बड़ी होकर भारत या अफ्रीका के ग्रामों में जाकर जनसेवा का कार्य करेंगी।

सन् १९३० में महात्मा गान्धी प्रथम गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने लन्दन गये। मिस हैलीमन ने गान्धी जी से भेंट की और उनसे अत्यन्त प्रभावित हुईं। वे गान्धी जी की शिष्या बन गईं और उनका हृदय भारत-सेवा के लिए बेचैन हो उठा, अत: १९३२ ई० में निजी प्रयासों से ही भारत पहुँचीं और उदयपुर शिक्षण संस्था विद्याभवन में अध्यापन कार्य करने लगीं।

भारत में आकर मिस हैलीमन ने अपना नाम सरला रखा। उदयपुर विद्याभवन में उन्होंने कठोर परिश्रम से हिन्दी सीखी और बच्चों को अंग्रेजी की अच्छी शिक्षा दी, लेकिन उन्हें केवल दो माह में यह अनुभव हो गया कि यह संस्था केवल सम्पन्न परिवारों के बच्चों की ही शिक्षण संस्था है। सरला बहिन अरावली पर्वत की तलहटी के गाँवों में साइकिल से पहुँचकर रोगियों की सेवा करतीं और स्त्रियों में प्रचलित पर्दा-प्रथा को दूर कर उनमें शिक्षा का प्रसार करतीं।

सन् १९३५ में वर्धा पहुँचकर सरला बहिन ने महात्मा गान्धी से भेंट की। मई १९३६ में विद्याभवन से त्यागपत्र देकर सरला बहिन अहमदाबाद में मजदूर संघ में काम करने पहुँचीं किन्तु उनका स्वास्थ्य खराब हो गया, अतः बम्बई जाकर उन्होंने अपना इलाज करवाया, तत्पश्चात वर्धा चली गयीं और 'नवभारत विद्यालय' में कार्य किया। वर्धा में निरन्तर कार्यशील रहने के कारण सरला बहिन का स्वास्थ्य पुनः खराब हो गया, अतः गान्धीजी ने स्वास्थ्य सुधार के लिए उन्हें अल्मोड़ा जाने का आदेश दिया। सितम्बर १९४१ में वे गान्धी आश्रम, चनौदा (अल्मोड़ा) पहुँच गईं। चनौदा में भी समाज सेविका सरला बहिन ने समय व्यर्थ नहीं व्यतीत किया। प्रारम्भ में वे तिब्बती ऊन को फानने, कताने और स्थानीय महिलाओं को बुनाई का काम सिखाने में लगीं, तत्पश्चात् आश्रम के कार्यकर्ताओं के साथ पहाड़ों के दुर्गम और उतार-चढ़ाव के रास्तों पर खादी बेचने, कच्चा माल खरीदने-बेचने में व्यस्त रहती थीं। इससे वे जनसाधारण में घुलमिल गईं और काफी लोग उन्हें जानने लगे।

अगस्त १९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में कुमाऊँ ने भी महत्वपूर्ण भाग लिया। गान्धी आश्रम को राजनैतिक जागृति का केन्द्र समझकर अंग्रेजों ने सभी आश्रमवासियों को जेल में डाल दिया। इस पर सरला बहिन श्वेत खादी वस्त्र पहिन कर तत्कालीन कुमाऊँ कमिश्नर मि० एक्टर से मिलीं और उन्हें निर्दोष आश्रमवासियों की गिरफ्तारी से अवगत कराया। उनके वस्त्रों को देखकर तथा बातों को सुनकर कमिश्नर आगबबूला होकर बोला कि मैं सभी आश्रमवासियों को फाँसी के तख्ते पर लटका देना चाहता हूँ। कमिश्नर साहब के उत्तेजनात्मक उत्तर को सुनकर सरला बहिन बहुत दुःखी हुईं और फिर चनौदा लौटकर आश्रमवासियों एवं स्वतन्त्रता सेनानियों के परिवारों की सहायता करने लगीं।

सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में ब्रिटिश सेना ने अल्मोड़ा जिले में आतंक फैला दिया। उसने जनता पर तरह-तरह के अत्याचार किये— पुरुषों को जेल में ठूँस दिया, निर्दोष जनता पर गोलियाँ चलाई गई, घर नीलाम करा दिये गये। इन सब कारणों से परिवारों की स्थिति असहाय हो गई।

ऐसी स्थिति में सरला बहिन ने गाँव-गाँव घूमकर असहाय परिवारों की मदद की। सरला बहिन की उपरोक्त गतिविधियों को देखकर ब्रिटिश सरकार चिढ़ गई और फरवरी १९४४ में उन्हें गिरफ्तार कर लिया, किन्तु दो माह बाद ही उन्हें छोड़ दिया गया। सरला बहिन पुनः सामाजिक कार्यों में लग गयीं। उन्होंने शान्तिलाल त्रिवेदी के साथ पद-यात्राएँ कर बोरारौ, कत्यूर, सालम पहुँच कर सत्याग्रहियों के परिवारों को यथाशक्ति सहायता प्रदान की। वे पहाड़ों की कठिन पदयात्रा में भी सदैव प्रसन्नचित्त रहती थीं। इसी समय सरला बहिन को अल्मोड़ा जिलाधिकारी ने आदेश दिया कि वे भविष्य में बिना उनसे आज्ञा लिये कौसानी से बाहर न जायें। सरला बहिन ने उक्त अपमानजनक आदेश का विरोध कर उसका तत्काल उल्लंघन कर दिया, परिणामस्वरूप उन्हें गिरफ्तार कर एक वर्ष की कड़ी कैद की सजा दी गयी। उनके द्वारा कुमाऊँ के लोगों में राष्ट्रीय चेतना पैदा करने के कारण वे ब्रिटिश सरकार के लिए खतरा बनी हुई थीं। अंग्रेज सरकार ने उन्हें 'अल्मोड़ा का सबसे खतरनाक व्यक्ति' की संज्ञा दी थी, क्योंकि सरला बहिन यहाँ के निवासियों के लिए प्रेरणा स्रोत बनी हुई थीं। लोग सोचते थे कि एक विदेशी महिला भारतमाता की सेवा के लिए उल्लेखनीय कार्य कर रही है, अतः इससे यहाँ के निवासियों में उत्साह का संचार होना स्वाभाविक ही था।

सरला बहिन को आभास हुआ कि पहाड़ों में असली शक्ति स्त्रियों की ही है। वे परिश्रमी हैं और बिना पुरुषों की सहायता के भी जीवनयापन कर सकती हैं, अतः १९४५ ई० में उन्होंने कस्तूरबा महिला उत्थान मण्डल के अधीन पर्वतीय बालिकाओं के लिए कौसानी में 'लक्ष्मी आश्रम' की स्थापना की और कन्याओं को व्यावहारिक शिक्षा देकर महिला उत्थान का कार्यक्रम प्रारम्भ कर दिया। यह आश्रम अब भी है। महिला उत्थान के अतिरिक्त 'शराबबन्दी-आन्दोलन' एवं 'भूदान आन्दोलन' में भी सरला बहिन उत्तराखण्ड की मार्गदर्शिका हैं।

सन् १९६२ में भारत-चीन तथा १९६५ में भारत-पाकिस्तान युद्धों के पश्चात् भारत सरकार ने सीमा क्षेत्र में एक विदेशी महिला होने के कारण उनके स्वच्छन्द घूमने को अनुचित समझते हुए उन्हें जोशीमठ जाने व घूमने की आज्ञा नहीं दी। इससे नाराज होकर सरला बहिन १९६६ के दिसम्बर माह में उत्तराखण्ड में कभी न रहने का निश्चय करके वर्धा चली गईं। वर्तमान में वे विनोवा भावे के साथ भारतवर्ष के कार्य में व्यस्त हैं। १९६८ में सरकार ने सरला बहिन के उत्तराखण्ड में स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने पर लगी रोक को हटा लिया किन्तु सरला बहिन इस अपमान को न सह सकीं और उत्तराखण्ड में अब नहीं आयीं।

निस्स्वार्थ देशभक्त इन्द्रसिंह नयाल (जन्म सन् १९०२)

"श्री इन्द्रसिंह नयाल कुमाऊँ के उन वरिष्ठ स्वतन्त्रता-सेनानियों में से हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता के पूर्व आजादी की लड़ाई में हिस्सा लिया और स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्र के रचनात्मक कार्यक्रमों में भी सक्रिय योगदान दिया। दोनों ही क्षेत्रों में श्री नयाल का योगदान महत्वपूर्ण है।"

इन्द्रसिंह नयाल का जन्म दिसम्बर, १९०२ को अल्मोड़ा जिले के बिसौदकोट नामक ग्राम में हुआ। उनके पिता का नाम श्री नाथूसिंह नयाल था। प्रारम्भ से ही इन्द्रसिंह नयाल की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अल्मोड़ा के 'इण्डियन बौयज हिल स्कूल' में अर्जित की। इस स्कूल में बाईबिल की तरह सनातन धर्म की पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं। इन्द्रसिंह नयाल पर वहाँ की धार्मिक शिक्षा का व्यापक प्रभाव पड़ा, जिससे उनमें अनेक चारित्रिक गुणों का विकास हुआ। 'इण्डियन बौयज हिल स्कूल' में कक्षा छः तक की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने 'रामजे हाईस्कूल' अल्मोड़ा में प्रवेश लिया। इसी अवधि में अल्मोड़ा में स्वामी सत्यदेव का आगमन हुआ। उन्होंने अपनी राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत भाषणों तथा 'शुद्ध-साहित्य-समिति' की स्थापना कर अल्मोड़ा के नवयुवकों में स्वतन्त्रता की अलख जगाई। दूसरे शब्दों में स्वामी सत्यदेव अल्मोड़ा के राजनैतिक वातावरण पर आच्छादित हो गये। 'शुद्ध-साहित्य-समिति' में राष्ट्रीय भावनाओं से सम्बन्धित पुस्तकें, जिन्हें रखना व पढ़ना अवैधानिक था, रखी गई थीं। इन पुस्तकों को समिति के सदस्य-क्रमानुसार गुप्त रूप से पढ़ा करते थे। सन् १९१६ से १९१९ ई० तक इन्द्रसिंह नयाल भी 'शुद्ध-साहित्य-समिति' के सक्रिय सदस्य रहे। उन पर स्वामी सत्यदेव की जनतन्त्रात्मक भावनाओं तथा उनके द्वारा स्थापित 'शुद्ध-साहित्य-समिति' के राष्ट्रीय साहित्य का गहरा प्रभाव पड़ा। फलतः उनकी विचारधाराओं में तेजी से परिवर्तन हुआ और उन्होंने राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया।

सन् १९१९ में 'रामजे हाईस्कूल' अल्मोड़ा से हाईस्कूल की परीक्षा पास करने के पश्चात् इन्द्रसिंह नयाल उच्च शिक्षा हेतु 'म्योर सेण्ट्रल कॉलेज' इलाहाबाद में
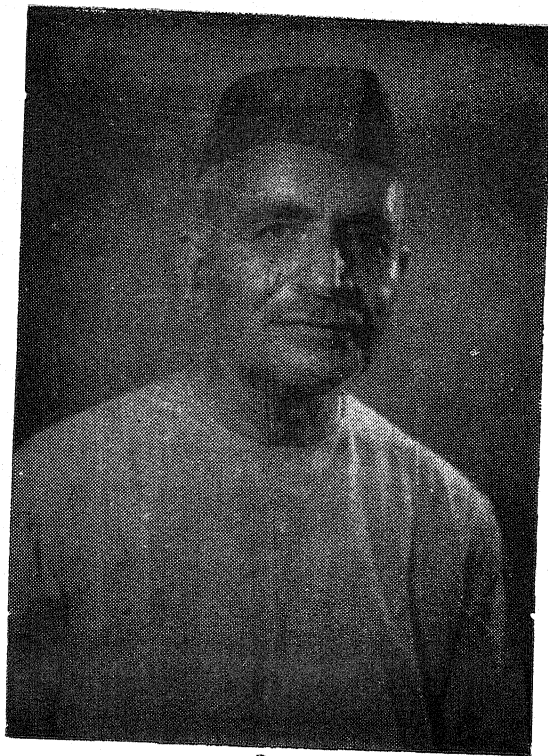
समाज सुधारक

देशभक्त श्री इन्द्रसिंह नयाल

चले गये। वहाँ सन् १९२१ में इण्टरमीडिएट, सन् १९२३ में बी० एस-सी० और सन् १९२६ में एल-एल० बी० की परीक्षा पास की।

अल्मोड़ा में इन्द्रसिंह नयाल के हृदय में देशभक्ति की भावनाओं के जो बीज बोये गये थे, इलाहाबाद में उच्च शिक्षा प्राप्त करते हुए तथा वहाँ देश के महान् नेताओं के सम्पर्क में आने से, वे पल्लवित होने लगे। सन् १९२० में इलाहाबाद में विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का कार्यक्रम अपनाया गया, जिसमें इन्द्रसिंह नयाल ने भी भाग लिया और इस अठारह वर्ष के नवयुवक ने विदेशी वस्त्र न पहनने की शपथ ली। उस दिन से वे वर्तमान समय तक निरन्तर खादी का प्रयोग करते आ रहे हैं।

सन् १९२०-२१ में सम्पूर्ण देश में असहयोग आन्दोलन की लहर दौड़ गई। आन्दोलन को तीव्रता प्रदान करने के लिए सन् १९२१ में जवाहरलाल नेहरू ने इलाहाबाद में काँग्रेस स्वयंसेवक दल गठित किया। इन्द्रसिंह नयाल ने उसमें एक सक्रिय स्वयंसेवक के रूप में भाग लिया और असहयोग आन्दोलन की अवधि में कुछ दिनों के लिए विद्यालय का भी बहिष्कार किया।

सन् १९२५ में महात्मा गान्धी ने इलाहाबाद की यात्रा की। महात्मा गान्धी की इस यात्रा के अवसर पर इन्द्रसिंह नयाल ने एक स्वयंसेवक के रूप में कार्य किया और गान्धी जी की विचारधाराओं से काफी प्रभावित हुए। यह प्रभाव वर्तमान समय में भी उन पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

सन् १९२६ में वकालत की परीक्षा पास कर इन्द्रसिंह नयाल इलाहाबाद से नैनीताल आये और वहाँ छः माह तक तत्कालीन ख्यातिप्राप्त वकील गोविन्द बल्लभ पन्त के अधीन प्रशिक्षण प्राप्त किया। नैनीताल में वे अपने चाचा हर्ष सिंह मुख्यतार के साथ रहते थे। २७ जनवरी, सन् १९२७ से उन्होंने नैनीताल में अपनी वकालत प्रारम्भ कर दी और स्वयं भी एक प्रसिद्ध वकील सिद्ध हुए।

सन् १९१८ में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगाये जाने पर 'अल्मोड़ा अखबार' बन्द हो गया और 'शक्ति' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। यद्यपि यह पत्र एक राष्ट्रीय पत्र था, तथापि इसमें जातीय तथा व्यक्तिगत पक्षपात से सम्बन्धित लेख भी प्रकाशित होते थे, जिसने कुमाऊँ के समाज का वातावरण दूषित कर दिया था। सन् १९२४ में 'शक्ति' के एक अंक में बद्रीदत्त पाण्डे ने सम्पादकीय कॉलम में 'कुमाऊँ-समाज' नामक शीर्षक के माध्यम से एक लेख प्रकाशित किया जिससे समाज में वर्ग-संघर्ष उत्पन्न हो जाने का भय था। ऐसी स्थिति में निर्भीक समाज-सेवी इन्द्रसिंह नयाल ने समाज में व्याप्त क्षोभ को दूर करने के लिए उपरोक्त लेख का प्रतिवाद 'शक्ति' में प्रकाशित करवाया।

सन् १९२९ में महात्मा गान्धी ने कुमाऊँ के अनेक स्थानों की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक यात्रा की। गान्धी जी के नैनीताल आगमन पर वहाँ 'गान्धी-स्वागत-समिति' गठित की गई। इन्द्रसिंह नयाल को इस समिति का कोषाध्यक्ष निर्वाचित किया गया। तत्पश्चात् उन्होंने भवाली और अल्मोड़ा में गान्धी जी के स्वागत में आयोजित सभाओं में भी भाग लिया।

सन् १९३० में नैनीताल में नमक-सत्याग्रह का नेतृत्व गोविन्दबल्लभ पन्त ने किया, लेकिन सरकार ने उन्हें तुरन्त गिरफ्तार कर लिया। उनकी गिरफ्तारी के पश्चात् नमक-सत्याग्रह का नेतृत्व इन्द्रसिंह नयाल के सबल हाथों में आ गया। पन्त जी अपनी गिरफ्तारी के समय एक महत्वपूर्ण पत्र इन्द्रसिंह के नाम लिख गये, जिसमें नमक-सत्याग्रह को संचालित करने के निर्देशन दिये गये थे। ब्रिटिश सरकार ने नमक-सत्याग्रह के दमन हेतु पन्त जी की गिरफ्तारी के दूसरे दिन ही मल्लीताल रामलीला के रंगमंच पर हो रही जन-सभा में जनता के दूसरे बड़े नेता इन्द्रसिंह नयाल को भी गिरफ्तार कर लिया और छः माह की कारावास की सजा देकर शाहजहाँपुर जेल में बन्द कर दिया।

इन्द्रसिंह नयाल के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने अपने को केवल राष्ट्रीय आन्दोलनों तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु सामाजिक सुधारों तथा रचनात्मक कार्यों की ओर भी अपना ध्यान आकृष्ट किया। सन् १९३२ में अल्मोड़ा के बद्रीश्वर मैदान में कुमाऊँ के समाज में व्याप्त छुआछूत की प्रथा को समाप्त करने के लिए बद्रीदत्त जोशी की अध्यक्षता में 'कुमाऊँ-समाज-सुधार सम्मेलन' आयोजित किया गया। जिसमें कुमाऊँ कमिश्नरी के कई नेताओं ने भाग लिया। इन नेताओं में गोविन्दबल्लभ पन्त, देशभक्त मोहन जोशी, इन्द्र सिंह नयाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस सम्मेलन में पन्नालाल द्वारा लिखित 'कुमाऊँ लोकल कस्टमस' नामक पुस्तक को निन्दनीय कहा गया और सरकार द्वारा उसे रद्द किये जाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। इसके समर्थन में यह तर्क दिया गया कि पन्नालाल ने इस पुस्तक में उच्च ब्राह्मणों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है और उन्होंने समस्त जातियों को समान दृष्टि से देखा है। यह प्रस्ताव संकुचित मनोवृत्ति के कुछ ब्राह्मणों के द्वारा प्रस्तुत किया गया था, जो कुमाऊँ के समाज में पारस्परिक वैमनस्य का द्योतक है। जनता के हित को नजर-अन्दाज करते हुए इन्द्रसिंह नयाल ने उपरोक्त प्रस्ताव का विरोध किया जिसमें उन्हें सफलता मिली और यह प्रस्ताव रद्द कर दिया गया।

सन् १९३२ में कुमाऊँ के युवकों में सामाजिक तथा राष्ट्रीय जागृति की भावनाओं का संचार करने के लिए अल्मोड़ा में 'कुमाऊँ युवक सम्मेलन' आयोजित

किया गया। इन्द्रसिंह नयाल को इस सम्मेलन का सभापति मनोनीत किया गया। सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए गोविन्दबल्लभ पन्त ने एक अत्यन्त मार्मिक भाषण दिया, जिसमें उन्होंने युवकों से संकुचित मनोवृत्ति को त्यागकर समाज में एकता स्थापित करने को कहा। इस सम्मेलन में अपनी आपसी फूट का परिचय देते हुए कुछ कूर्मांचल निवासियों ने अपने को मैदानी क्षेत्रों से आया हुआ बताकर पर्वतीय जनता से भिन्न बताने की घृणित नीति का परिचय दिया। इन्द्रसिंह नयाल ने इस घृणित नीति की तीव्र भर्त्सना की। उन्होंने सभापति के पद से एक प्रभावशाली तथा राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत व्याख्यान देते हुए कुमाऊँ के समाज में व्याप्त पारस्परिक वैमनस्य की भावनाओं पर कुठाराघात किया और जन-साधारण को एकता के सूत्र में बाँधने पर जोर दिया।

सन् १९३२ में अनेक मित्रों तथा सहयोगियों के अनुरोध पर इन्द्रसिंह नयाल 'उच्यूर-सालम-बिसौदा' नामक क्षेत्र से जिला-परिषद् के निर्वाचन में खड़े हुए। प्रारम्भ में सीमित दृष्टिकोण के उनके कुछ विरोधियों ने उनका विरोध किया, किन्तु अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण उनके प्रतिद्वन्द्वियों को उनके सम्मुख नतमस्तक होना पड़ा। परिणामस्वरूप इन्द्रसिंह नयाल निर्विरोध जिला-परिषद्, अल्मोड़ा के सदस्य निर्वाचित हुए। इसी समय उन्हें जिला-परिषद् के अध्यक्ष पद के लिए आमंत्रित किया गया, किन्तु उन्होंने इस पद के लिए देशभक्त मोहन जोशी का नाम प्रेषित किया। अल्मोड़ा जिला-परिषद् में इन्द्रसिंह नयाल ने एक जागरूक सदस्य के रूप में कार्य किया। इस अवधि में उन्होंने जैंती जूनियर हाईस्कूल को जिला-परिषद् को हस्तान्तरित करवाया; जैंती में एक बुनकर आश्रम की स्थापना करवाई; लमगड़ा में एक औषधालय खुलवाया व अनेक मार्गों का निर्माण करवाया। सन् १९३२ में उन्हें जिला-परिषद् की ओर से राजकीय माध्यमिक विद्यालय, अल्मोड़ा की सलाहकार-परिषद् का सदस्य चुना गया, लेकिन एक स्वतन्त्रता-सेनानी होने के कारण तत्कालीन अल्मोड़ा जिले के डिप्टी कमिश्नर बैंस ने सरकार से अनुरोध कर उनका नाम विद्यालय की सलाहकार-परिषद् से रद्द करवा दिया; क्योंकि अंग्रेजों में इस बात से भय व्याप्त था कि यदि इन्द्रसिंह नयाल विद्यालय की सलाहकार-परिषद् में रहे, तो उनकी राष्ट्रीय भावनाओं का प्रभाव वहाँ के विद्यार्थियों पर भी पड़ेगा। सन् १९३५ तक वे अल्मोड़ा जिला-परिषद् के सदस्य रहे।

सन् १९३५ में इन्द्रसिंह नयाल को नैनीताल जिला-परिषद् का सदस्य निर्वाचित किया गया। इस काल में उन्होंने जिला-परिषद् का ध्यान सुधारों की ओर आकर्षित किया। नैनीताल में भी उन्हें जिला-परिषद् की शिक्षा समिति का

सदस्य चुना गया। तत्कालीन कुमाऊँ के कमिश्नर इबटसन ने भी बैंस का अनुकरण किया और उनका नाम गवर्नर के आदेश द्वारा शिक्षा-समिति से रद्द करवा दिया।

सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भी उत्तराखण्ड के निवासियों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। देश के अन्य भागों के समान कुमाऊँ के युवकों ने भी इस आन्दोलन की अवधि में हिंसात्मक घटनाओं की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। नैनीताल जिले के कुछ युवकों ने फरार रह कर विध्वंसात्मक कार्यों पर जोर दिया। इन युवकों में श्यामलाल वर्मा का नाम प्रमुख है। सरकार द्वारा इन युवकों को गिरफ्तार किया गया और उन पर राजद्रोह का मुकदमा दायर कर दिया। जब इन युवकों की पैरवी का प्रश्न उठ खड़ा हुआ, तो किसी भी वकील को उनकी पैरवी करने का साहस नहीं हुआ। ऐसी विषम परिस्थिति में इन्द्र सिंह नयाल ने अपनी निस्स्वार्थ देशभक्ति का परिचय देते हुए उन युवकों की निशुल्क पैरवी कर उनकी दीर्घकालीन सजाएँ अल्पकालीन सजाओं में परिवर्तित करा दीं।

सन् १९४८ में इन्द्रसिंह नयाल नैनीताल जिला-परिषद् के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और १९५२ ई० तक इसी पद पर कार्यरत रहे। इस अवधि में उन्होंने जिले में शिक्षा के प्रसार एवं जिला-परिषद् की आमदनी बढ़ाने में अपना सक्रिय योगदान दिया। सन् १९४८ से पूर्व नैनीताल जिले में केवल चार जूनियर हाई स्कूल थे। उन्होंने अपने अध्यक्ष पद की अवधि में इनकी संख्या बत्तीस तक बढ़ा दी तथा तीन सौ नयी प्राथमिक पाठशालाएँ खुलवाईं। सन् १९५१ में ओखलकाँडा जैसे पिछड़े तथा बीहड़ क्षेत्र में हाईस्कूल की स्थापना करवाई। वर्तमान समय में यह विद्यालय इण्टरमीडिएट है और इसमें एक अच्छी प्रयोगशाला तथा पुस्तकालय भी है। इस विद्यालय में दूर के छात्रों के निवास के लिए एक छात्रावास की स्थापना की गई है जिसमें लगभग एक सौ विद्यार्थी सुविधापूर्वक निवास कर सकते हैं। वर्तमान समय में भी इन्द्रसिंह नयाल इस शिक्षण-संस्थान के प्रबन्धक हैं और यह एक अच्छा विद्यालय है। सन् १९५५ में थारू जाति में व्याप्त अशिक्षा के अन्धकार को भगाने के लिए इन्द्रसिंह नयाल ने खटीमा में 'थारू हाईस्कूल' की स्थापना करवाई।

सन् १९५२ से १९६२ ई० तक इन्द्रसिंह नयाल उत्तर प्रदेश विधान-परिषद् के एक सक्रिय सदस्य रहे। वहाँ उन्हें एक सफल तथा प्रभावशाली वक्ता के रूप में ख्याति प्राप्ति थी।

डॉ० सम्पूर्णानन्द के मुख्य-मंत्रित्व-काल में उत्तर प्रदेश के प्रत्येक जिले में

'भ्रष्टाचार विरोधी समिति' की स्थापना की गई थी। नैनीताल जिले में इन्द्रसिंह नयाल को इस समिति का अध्यक्ष बनाया गया। उन्होंने इस पद पर निरन्तर चार वर्ष तक कार्य किया। इस पद पर कार्य करते हुए उन्होंने जिले में भ्रष्टाचार की जाँच करवाई और इस सम्बन्ध में सरकार को भी अवगत कराया। सरकारी कर्मचारियों एवं अधिकारियों का यथासम्भव सहयोग न मिलने के कारण सन् १९६० में उन्होंने 'भ्रष्टाचार विरोधी समिति' के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया। मुख्यमंत्री डॉ० सम्पूर्णानन्द ने उन्हें अपने पद पर बने रहने का काफी अनुरोध किया, किन्तु उन्होंने त्याग-पत्र देना ही उचित समझा।

सन् १९६२ के बाद इन्द्रसिंह नयाल ने कुमाऊँ के समाज में व्याप्त मद्यपान की बुराई को दूर करने के लिए अनेक प्रयास किये। उन्होंने कई स्थानों की पदयात्राएँ कीं और जन-साधारण को मद्यपान की बुराइयों से अवगत कराया। वर्तमान समय में भी वे इस ओर प्रयत्नशील हैं, परन्तु युवकों, अधिकारियों तथा वरिष्ठ लोगों से यथासम्भव सहयोग न मिलने के कारण इस कार्य में पर्याप्त सफलता नहीं मिल पा रही है। इन्द्रसिंह नयाल ने प्रस्तुत पुस्तक के लेखकों से भी मद्यनिषेध के कार्यक्रम में सक्रिय सहयोग देने का अनुरोध किया है। भारत सरकार के भूतपूर्व ऊर्जा मंत्री कृष्णचन्द्र पन्त ने इन्द्रसिंह नयाल के क्रिया-कलापों पर प्रकाश डालते हुए लिखा—"श्री इन्द्रसिंह नयाल कुमाऊँ के उन वरिष्ठ स्वतंत्रता-सेनानियों में से हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता से पूर्व आजादी की लड़ाई में हिस्सा लिया और स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्र के रचनात्मक कार्यक्रमों में भी सक्रिय योगदान दिया। दोनों ही क्षेत्रों में श्री नयाल का योगदान महत्वपूर्ण है।"

लेखक इन्द्रसिंह नयाल के मानवोचित गुणों तथा आदर्श चरित्र से काफी प्रभावित हुए हैं। उनका जीवन संयमित रहा और है, जो नवयुवकों के लिए अनुकरणीय है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी चौहत्तर वर्ष की आयु में भी एक कर्मठ, अध्ययनशील तथा इतिहास के प्रति जिज्ञासा रखने वाले व्यक्ति हैं। उन्होंने सन् १९७३ में 'स्वतन्त्रता-संग्राम में कुमाऊँ का योगदान' नामक पुस्तक की रचना की। इस पुस्तक में उनके निजी संस्मरण देखते ही बनते हैं और उसमें अनेक दुर्लभ ऐतिहासिक चित्रों का संकलन किया गया है। इस पुस्तक का वर्णन ऊर्जा मंत्री कृष्णचन्द्र पन्त ने निम्न शब्दों में किया—

"प्रस्तुत पुस्तक में श्री नयाल ने देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में कुमाऊँ के ऐतिहासिक योगदान का क्रमबद्ध और ऐतिहासिक विवरण दिया है। व्यक्तिगत अनुभवों और संस्मरणों के कारण यह विवरण काफी रोचक हो गया है। मुझे

विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों, विशेषतः नई पीढ़ी के युवकों के लिए प्ररण। तथा उपादेय सिद्ध होगी।"

इन्द्रसिंह नयाल का कहना है कि उनका जीवन संघर्षमय रहा है। जीवन संघर्षमय ही अच्छा होता है, अन्यथा मनुष्य अकर्मण्य हो जाता है; अर्थात् संघर्ष-मय जीवन ही मनुष्य को कर्मठ बनाता है। इन्द्रसिंह नयाल प्राचीन एवं नवीन धार्मिक तथा वैज्ञानिक विचारों के समन्वयकारी चिन्तनशील व्यक्ति हैं। वे शुद्ध खद्दरधारी व गान्धीवादी हैं।

सत्याग्रही सैनिक ज्योतिराम काण्डपाल (सन् १८९३-३८ ई०)

"संगठन के द्वारा ही प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है। केवल प्रस्तावों से प्रान्त में व्यापक सत्याग्रह होना और सफलता अर्जित करना कठिन बात है।"

ज्योतिराम काण्डपाल का जन्म सन् १८९३ में बिच्चला चौकोट के पैंठना नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम कमलापति काण्डपाल था। ज्योतिराम की प्रारम्भिक शिक्षा बिच्चला चौकोट में स्थित स्याल्दे-स्कूल में हुई थी। उन्होंने जूनियर हाईस्कूल पास कर अध्यापन कार्य के लिए प्रशिक्षण (नौरमल ट्रेनिंग) प्राप्त किया। तत्पश्चात् अध्यापन कार्य के माध्यम से अल्मोड़ा जिले के पिछड़े क्षेत्र, तीनों चौकोटों में जागृति फैलाने की चेष्टा की। ज्योतिराम स्याल्दे तथा गुमटी के प्राइमरी के स्कूलों में अध्यापक रहे।

ज्योतिराम काण्डपाल की चौखुटिया में एक दुकान थी। सन् १९२९ में एक दिन जब वे अपनी दुकान में बैठ हुए थे, तो एक महत्वपूर्ण घटना घटी, जिसने उनके जीवन को नया मोड़ प्रदान किया। घटना इस प्रकार है—बद्रीनाथ जाने वाले एक अपरिचित यात्री ने ज्योतिराम काण्डपाल को चौखुटिया में स्थित उनकी दुकान पर उन्हें एक पत्र दिया। दिन भर कार्य में व्यस्त रहने के कारण उन्होंने रात्रि में विश्राम के समय इस पत्र को पढ़ा। पत्र में केवल इतना ही लिखा था—"हमें तुम्हारी आवश्यकता है।" ज्योतिराम इस पत्र को पढ़कर स्तब्ध रह गये। अन्त में काफी सोच-विचार के पश्चात् उन्होंने बद्रीनाथ जाने का निश्चय किया। अतएव वे दूसरे ही दिन पत्र देने वाले व्यक्ति की खोज में बद्रीनाथ की यात्रा हेतु चल पड़े, लेकिन बद्रीनाथ पहुँचने पर भी उक्त व्यक्ति का पता न चल सका। इसके बाद ज्योतिराम नें उस व्यक्ति की खोज हेतु कई स्थानों की यात्रा की और अन्त में मेरठ पहुँचे, जहाँ उनकी भेंट महात्मा गान्धी से हुई। उन्होंने गान्धी जी को उपर्युक्त पत्र दिखाया। पत्र को पढ़ कर गान्धी जी ने मुस्कराते हुए कहा—"हमें तुम्हारी आवश्यकता है।" गान्धी जी के साथ ज्योतिराम की यह प्रथम मुलाकात थी। अपनी प्रथम मुलाकात में ही गान्धी जी ने इस महान् देश-प्रेमी, समाज-सेवी को पहचान लिया और वे गान्धी जी के परम शिष्य बन गये।

सन् १९२९ में महात्मा गान्धी ने अपने स्वास्थ्य सुधार तथा खादी-प्रचार के लिए कुमाऊँ के कई स्थानों की महत्वपूर्ण-ऐतिहासिक यात्रा की। उनकी इस यात्रा से ज्योतिराम अत्यधिक प्रभावित हुए, अतः वे रचनात्मक कार्यों में गान्धी जी का हाथ बँटाने के लिए एक वर्ष का अवकाश लेकर साबरमती आश्रम में चले गये।

ज्योतिराम हिन्दी साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे। साबरमती आश्रम में उनका ध्यान आध्यात्म की ओर अधिक था। सौभाग्यवश आश्रम में सुरेन्द्र जी आध्यात्म के पण्डित थे। महात्मा गान्धी समय-समय पर अनेक शंकाओं का समाधान उन्हीं से करवाते थे। ज्योतिराम सुरेन्द्र जी के शिष्य बन गये।

ज्योतिराम भारतमाता के एक सच्चे सपूत थे। वे संगठनात्मक शक्ति में अधिक विश्वास करते थे। उनका कहना था—"संगठन के द्वारा ही प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है। केवल प्रस्तावों से प्रान्त में व्यापक सत्याग्रह होना और सफलता अर्जित करना कठिन बात है।"

सन् १९३० में महात्मा गान्धी के नेतृत्व में नमक-सत्याग्रह संचालित किया गया। नमक-सत्याग्रह में सम्पूर्ण भारतवर्ष से अठत्तर व्यक्तियों ने गान्धी जी के साथ साबरमती से डांडी तक की प्रसिद्ध ऐतिहासिक यात्रा में भाग लिया। इन सभी व्यक्तियों को गान्धी जी ने 'सत्याग्रही-सैनिक' की संज्ञा दी और उनके नम्बर भी निर्धारित किये गये। इस सत्याग्रही-सेना में उत्तराखण्ड के तीन सत्याग्रही-सैनिकों ने भाग लिया, जिनके नाम ज्योतिराम काण्डपाल, भैरव जोशी और खड़क बहादुर थे। इनमें से अड़सठवें नम्बर के सत्याग्रही-सैनिक ज्योतिराम काण्डपाल और सत्तरवें नम्बर के सत्याग्रही-सैनिक भैरवदत्त जोशी दोनों बिच्चला चौकोट के निवासी थे, अतः यह बिच्चला चौकोट के लिए विशेष गौरव की बात है कि उसने अपनी प्राकृतिक सौंदर्य से सुसज्जित भूमि में महान् सपूतों को जन्म देकर देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की, लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसा चौकोट आज प्रत्येक दृष्टि से एक पिछड़ा हुआ क्षेत्र है।

नमक-सत्याग्रह की अवधि में ब्रिटिश सरकार ने दमन-नीति का आश्रय लिया, अतः नमक-कर का उल्लंघन कर सरकार के नमक के स्टौकों (भण्डारों) पर धावा बोलना मृत्यु का आलिंगन करना ही था, क्योंकि सरकार ने धरासना नमक डिपो पर अधिकार करने के लिए आने वाले सत्याग्रहियों पर लोहे के शिरों वाले पाँच फीट लम्बे डण्डे से प्रहार किया, जिससे उनकी खोपड़ियाँ फूटने लगीं तथा कन्धे टूटने लगे और उनके श्वेत खादी के वस्त्रों पर रुधिर फैल गया। सत्याग्रही बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े।

ज्योतिराम द्वारा करादी कैम्प से अल्मोड़ा काँग्रेस कमेटी के नाम भेजे गये २६।४।३० के पत्र से भी इस स्थिति पर प्रकाश पड़ता है—"आशा है कि दो या तीन दिन में यहाँ से उठकर सरकार के नमक के स्टौक पर धावा किया जायेगा, अगर वहाँ से जीता-जागता वापस आ गया तो फिर पत्र भेजूँगा, अन्यथा इसे अन्तिम पत्र मान कर स्वीकार कीजियेगा।"

नमक-सत्याग्रह में भाग लेने के पश्चात् सकुशल लौटकर ज्योतिराम ने तीनों चौकोटों (तल्ला चौकोट, बिच्चला चौकोट तथा मल्ला चौकोट) में जागृति फैलाने और खादी का प्रचार कर जन-साधारण को स्वावलम्बी बनाने के लिए देघाट में 'उद्योग मन्दिर' की स्थापना की। इस मन्दिर के निर्माण में चौकोट निवासियों ने तन-मन-धन से योगदान दिया। 'देघाट उद्योग मन्दिर' में खादी प्रचार के लिए तकलियाँ और चरखे चलने लगे तथा रोगियों के इलाज के लिए एक दवाखाना भी खोला गया, जहाँ से रोगियों को मुफ्त में दवा वितरित की जाती थी।

सन् १६३२ में, जन-साधारण में जागृति का केन्द्र होने के कारण ब्रिटिश सरकार ने 'देघाट उद्योग मन्दिर' को जब्त कर लिया। कुमाऊँ का कमिश्नर पौड़ी से होते हुए देघाट आया और उसने उद्योग मन्दिर का ताला तोड़कर सामान जब्त कर लिया।

सरकार द्वारा देघाट उद्योग मन्दिर जब्त कर लिये जाने के पश्चात् रोगियों की सेवा के लिए ज्योतिराम ने सुतड़िया (मासी के समीप) नामक स्थान पर एक निजी औषधालय की स्थापना की। ज्योतिराम एक समाज-सेवी के साथ-साथ भारत माता की स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने चौकोट की जनता को, ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत उसके दुःखों से एवं अधिकारों पर लगे प्रतिबन्धों से अवगत कराकर उसके हृदय में देश-प्रेम की अग्नि प्रज्ज्वलित कर ब्रिटिश शासन का विरोधी बना दिया। ५ अक्टूबर, सन् १६३७ में ज्योतिराम के सभापतित्व में स्याल्दे में एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें जंगलों से इमारती और कृषि सम्बन्धी औजारों की लकड़ी प्राप्त करने तथा पालीपछाऊँ में खादी के वस्त्रों के उद्योग संचालित करने की आज्ञा प्राप्त करने के लिए सरकार से अनुरोध किया गया। कहा जाता है कि ज्योतिराम स्वावलम्बन तथा अपने आदर्श चरित्र से व्यक्ति के हृदय-परिवर्तन पर विशेष जोर देते थे।

सन् १६३८ में ज्योतिराम का देहावसान हो गया। उनकी मृत्यु के पश्चात् खुशालसिंह मनराल (ग्राम उदयपुर) ने चौकोट में स्वतन्त्रता-संग्राम का नेतृत्व किया फलतः इस क्षेत्र का भारतवर्ष के स्वतन्त्रता-संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान रहा।

कुमाऊँ कमिश्नरी में सर्वप्रथम जेल-यात्रा करने वाला महान् स्वतन्त्रता सेनानी--

मोहनसिंह मेहता (जन्म सन् १८९७ ई०)

> "मुझे यह साफ दिखाई दे रहा है कि बिना स्वराज्य के अमन नहीं; न किसी को चैन मिलेगा। स्वराज्य के द्वारा ही जंगल खुलेंगे; इसी के द्वारा हमारे पेट की ज्वाला बुझेगी। बस, यही हमें अब सिद्धि देगा। मैं इस विश्वास से अब जेल जा रहा हूँ कि मुझे वहीं शान्ति व सान्त्वना मिलेगी। वहीं आनन्द है, वहीं परमानन्द है। भगवान कुमाऊँ को शान्ति दे, बल दे कि वह शेर की तरह जाग खड़ा हो और शान्ति तथा संयम से महात्मा गान्धी का हाथ बँटाये। स्वराज्य की जय !"

स्वतंत्रता-संग्राम के समय भारत माता की स्वतंत्रता के लिए कुमाऊँ कमिश्नरी से सर्वप्रथम जेल जाने वाले महान् स्वतंत्रता-सेनानी मोहनसिंह मेहता का जन्म सन् १८९७ ई० में अल्मोड़ा जिले के बजूला ग्राम (कत्यूर) में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री दीवानसिंह मेहता था। मोहनसिंह मेहता की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में हुई। तत्पश्चात् उन्होंने अल्मोड़ा रामजे हाईस्कूल में शिक्षा प्राप्त की। सन् १९१५ में वे तकनीकी शिक्षा अर्जित करने के लिए कानपुर विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने केवल एक वर्ष तक ही अध्ययन किया; क्योंकि इसी समय एकाएक उनकी विचारधाराओं में तीव्रता से परिवर्तन हुआ, अतः सन् १९१६ से उन्होंने स्कूल छोड़कर राजनीतिक कार्यक्रमों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और अल्मोड़ा में स्थापित होमरूल लीग की शाखा के सदस्य बन गये। स्कूल छोड़ने के पश्चात् वे अपने क्षेत्र में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार करने लगे। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होंने डंगोली में एक क्लब की स्थापना की और जन-साधारण से इस क्लब का सदस्य बनने का अनुरोध किया। इस क्लब में अध्ययन हेतु समाचार-पत्र तथा राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत पुस्तकें मँगवाई जाती थीं और जनता को इन्हें पढ़ने की प्रेरणा प्रदान की जाती थी। अस्तु शनैः-शनैः कत्यूर क्षेत्र की जनता में राष्ट्रीय भावनाओं का संचार हुआ।

ब्रिटिश-शासन के अन्तर्गत पटवारी लोग सरल ग्रामीणों पर मनमाने अत्याचार करते थे। मोहनसिंह मेहता अन्याय और अत्याचार के घोर विरोधी थे, अतः उन्होंने कत्यूर क्षेत्र की जनता से भ्रष्ट कर्मचारियों का विरोध करने को कहा। कत्यूर क्षेत्र में भी पट्टी के पटवारी के द्वारा फसल के समय नाली (एक नाली=दो किलो) वसूल करने की अवैध प्रथा प्रचलित थी। सन् १९१९ में मेहता जी ने इस अवैध कुप्रथा के विरुद्ध कत्यूर निवासियों को संगठित कर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया, जिसमें उन्हें सफलता मिली और पटवारी द्वारा निजी स्वार्थ हेतु ग्रामीणों से ली जाने वाली नाली की कुप्रथा समाप्त हो गई।

सन् १९१६ में कुमाऊँ में 'कुमाऊँ-परिषद्' की स्थापना हुई जिसकी शाखाएँ कुमाऊँ के कई स्थानों पर खोली गईं। ऐसी ही एक शाखा कत्यूर में भी खोली गई और सन् १९२१ में मेहता जी इसके सभापति रहे।

जनवरी, सन् १९२१ के कुली उतार, कुली बेगार और कुली बर्दायश कुप्रथाओं के विरुद्ध सफल आन्दोलन में मोहनसिंह मेहता ने सक्रिय भाग लिया। सरकारी कर्मचारी मेहता जी की भ्रष्टाचार विरोधी नीति से नाराज थे, अतः सरकारी कर्मचारियों ने उन्हें ब्रिटिश शासन का घोर विरोधी बताकर उनकी रिपोर्ट कर दी। फलतः मार्च, १९२१ को उनकी गिरफ्तारी का वारण्ट जारी हुआ और उन्हें गिरफ्तार किया गया। उनकी गिरफ्तारी का समाचार पाते ही बारह-तेरह मील से जनता पैदल मेहता जी के दर्शनार्थ आई। स्थान-स्थान पर उनकी आरती उतारी गई और पुष्प-मालाएँ पहनाई गईं। जनता 'महात्मा गान्धी की जय', 'वीर क्षत्रीय मोहनसिंह की जय' के नारे लगाते हुए आई। जनता ने पुलिस की गिरफ्तारी से मोहनसिंह मेहता को छुड़ाने का प्रयत्न किया। मेहता जी ने क्रोधित जन-समूह से शान्त रहने का आग्रह किया, किन्तु फिर भी जनता ने पटवारी को मेहता जी के घोड़े की दुम पकड़ने को बाध्य कर ही दिया। मेहता जी के सम्बन्धी उन्हें मुक्त करवाने के पक्ष में थे, अतः उन्होंने छः हजार की भारी जमानत देकर मेहता जी को छुड़ा लिया। यह सब मेहता जी की इच्छा के विरुद्ध था। उन्होंने कहा कि जमानत पर छूटना उनके तथा राष्ट्र के, दोनों के लिये कलंक है। अस्तु जुलाई, १९२१ को उन्होंने जमानत लेकर जेल की यात्रा की। यह ब्रिटिशकालीन कुमाऊँ कमिश्नरी के स्वतंत्रता-सेनानियों में प्रथम राजनीतिक गिरफ्तारी थी; अर्थात् कुमाऊँ कमिश्नरी के समस्त स्वतंत्रता-सेनानियों में देश की स्वतन्त्रता के लिए सर्वप्रथम जेल जाने का गौरव उन्हें प्राप्त है। मोहनसिंह मेहता में राष्ट्रीय भावनाएँ कूट-कूट कर भरी हुई थीं; जैसा कि जेल जाने से पूर्व 'शक्ति' साप्ताहिक पत्र को भेजे गये उनके एक लेख से विदित

होता है—"आज मैंने फैसला कर लिया है कि मेरा देश के लिए जेल जाना आवश्यक है। दुखिया मातृभूमि को इस समय मात्र जेल जाकर सन्तोष दिया जा सकता है। जब चारों ओर अन्याय और दमन का दौरदौरा है तो जेल से बाहर रहना अपनी इज्जत में बट्टा लगाना है, इसलिए मैं उस मन्दिर को जा रहा हूँ जहाँ लोकमान्य तिलक ने अपने जीवन का छठा भाग देश को स्वाधीन करने के लिए बिताया था तथा महात्मा गान्धी दुःखी देश-भाइयों के निमित्त सात बार हो आये हैं। मैं आपसे विदा माँगता हूँ। मैंने रानीखेत में जमानत दी थी, इसमें मेरी सलाह नहीं थी, और कई कारण आगये थे जिससे मैं बाध्य किया गया था, पर मेरा विवेक मुझ से हमेशा कहता था, 'तेरा कर्तव्य जेल जाने का ही है।' मैं न्यायाधीशों के न्यायाधीश परमात्मा की अदालत में निर्दोष हूँ। मैंने मनुष्यता के विरुद्ध कोई अपराध नहीं किया है। देशभक्ति मेरा जुर्म है। यदि यह अपराध है तो मैं दोषी हूँ। मैं किसी बाहरी प्रभाव से अपने हृदय को तसल्ली देने के लिए जमानत वापस नहीं ले रहा हूँ। वास्तव में जमानतरूपी बेड़ी से पिंड छुड़ाना चाहता हूँ। जो हो, मैं आज जामा बदलते समय अपने घनिष्ठ मित्रों से, विशेषकर कट्टर स्वराजवादी पण्डित बद्रीदत्त पाण्डे जी, देशभक्त पण्डित हरगोविन्द पन्त जी तथा पण्डित गोविन्दबल्लभ पन्त जी और राष्ट्रीयता के उपासक लाला चिरंजीलाल जी वकील से हाथ जोड़ कर नम्र निवेदन करूँगा कि वे अब कुमाऊँ की डूबती हुई नाव को सँभालें; गाँव-गाँव, घर-घर असहयोग का शंख फूँक दें और स्वराज्य का पवित्र मंत्र सबके हृदय में अंकित कर दें।

"मुझे यह साफ दिखाई दे रहा है कि बिना स्वराज्य अमन नहीं; न किसी को चैन मिलेगा। स्वराज्य के द्वारा ही जंगल खुलेंगे; इसी के द्वारा हमारे पेट की ज्वाला बुझेगी। बस, यही हमें अब सिद्धि देगा। मैं इस विश्वास से अब जेल जा रहा हूँ कि मुझे वहीं शान्ति व सान्त्वना मिलेगी। वहीं आनन्द है, वहीं परमानन्द है। भगवान कुमाऊँ को शान्ति दे, बल दे कि वह शेर की तरह जाग खड़ा हो और शान्ति तथा संयम से महात्मा गान्धी का हाथ बँटाये। स्वराज्य की जय हो! वन्दे मातरम्!"

जुलाई, सन् १९२१ में जब मेहता जी को गिरफ्तार कर अल्मोड़ा लाया जा रहा था तो स्थान-स्थान पर लोगों ने एकत्रित होकर उनका हार्दिक स्वागत किया, जिससे उनकी लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। कुमाऊँ कमिश्नरी में सर्वप्रथम उनकी राजनीतिक गिरफ्तारी से उनकी तीव्र राष्ट्रीय भावनाओं का ज्ञान हो जाता है। इस गिरफ्तारी में उन्हें नौ माह के कठोर कारावास की सजा तथा एक सौ रुपये का जुर्माना हुआ।

सन् १९२२ में जेल से रिहा होने के पश्चात् मेहता जी पुनः राष्ट्रीय कार्यों में एकजुट हो गये। सन् १९२२ में उन्हें एक वर्ष के लिए जिला काँग्रेस कमेटी का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। सन् १९२५ से वे निरन्तर नौ वर्ष तक अल्मोड़ा जिला-परिषद् के सदस्य रहे। उन्हें रचनात्मक कार्यों में भी रुचि थी, अतः इस काल में उन्होंने अस्पताल, सड़क, पुल, स्कूलों का जीर्णोद्धार एवं निर्माण-कार्य करवाया।

सन् १९२९ में मेहता जी ने अनाथ लोगों के पालन-पोषण के लिए आर्य अनाथालय की स्थापना करवाई। वर्तमान समय में यह संस्था जे० टी० सी० प्रशिक्षण स्कूल के रूप में परिवर्तित हो चुकी है। उन्होंने समाज के पिछड़े लोगों के उत्थान के लिए भी अनेक प्रयत्न किये। सन् १९२९ में वे अल्मोड़ा जिला काँग्रेस कमेटी के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। मेहता जी ने ग्राम सुधारों की ओर भी अपना ध्यान आकर्षित किया। सन् १९३३ में उन्होंने बैजनाथ में ग्राम सुधार समिति की स्थापना की और स्वयं उसके सभापति रहे। इस समिति के माध्यम से उन्होंने जनसाधारण में स्वच्छता, अस्पृश्यता निवारण तथा ग्रामवटियों के जीर्णोद्धार के कार्यों का प्रचार किया। सन् १९३८ में बैजनाथ में कताई-बुनाई के प्रचार हेतु एक केन्द्र की स्थापना की गई। सन् १९४० में उन्होंने बिच्चला कत्यूर में शिशु पालन समिति की स्थापना की।

सन् १९४१ में सम्पूर्ण भारतवर्ष में व्यक्तिगत सत्याग्रह की धूम मच गई। ब्रिटिश सरकार ने सत्याग्रहियों को गिरफ्तार कर जेलों में बन्द कर दिया। एक सक्रिय सत्याग्रही होने के कारण मेहता जी को भी गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें आठ माह की कैद की सजा तथा पचास रुपये का आर्थिक दण्ड दिया गया। उनकी गिरफ्तारी का समाचार दिनांक ९ तथा १२ सितम्बर, १९४१ के 'दि हिन्दुस्तान टाइम्स' में प्रकाशित हुआ है।

सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन पर दो सौ पचहत्तर रुपये का सामूहिक जुर्माना किया गया। इस आन्दोलन में अस्वस्थता के कारण उन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया था।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भी उन्होंने जन-कल्याणकारी कार्यों की ओर विशेष ध्यान दिया। कत्यूर क्षेत्र में अनेक जन-कल्याणकारी समितियों की स्थापना की। सन् १९४८ में उन्होंने डंगाली, मल्ला कत्यूर सहयोग संघ की स्थापना की जिसके अधीन इस समय नौ साधन समितियाँ—ऋण संघ, पूजी वन सुधार समितियाँ आदि कार्य कर रही हैं। मेहता जी स्वयं भी इस संघ के सभापति तथा प्रतिनिधि रहे।

मेहता जी सन् १९५३ में अल्मोड़ा जिला कांग्रेस कमेटी के प्रधान रहे और १९५४ में उसके उपसभापति निर्वाचित हुए। तत्पश्चात् अनेक अवैतनिक पदों पर कार्य किया और सन् १९५७ से १९६६ ई० तक उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य रहे। वे विधान सभा की याचिका समिति के सदस्य भी रहे। इस अवधि में वे उत्तराखण्ड वन समिति तथा उत्तराखण्ड नियोजन समिति के भी सदस्य रहे तथा आई० टी० आई० अल्मोड़ा के दो बार अध्यक्ष रहे। सन् १९६१ से १९६३ ई० तक उन्होंने वज्यूला में स्थित अपना निजी मकान विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए निशुल्क प्रदान किया। सन् १९७१-७२ ई० में वे भूमि सुधार बैंक लखनऊ के संचालक रहे तथा अल्मोड़ा जिले में सहकारी आन्दोलन एवं प्रसार में उन्होंने महत्वपूर्ण भाग लिया।

इस प्रकार मोहनसिह मेहता ने स्वतन्त्रता से पूर्व स्वतन्त्रता-संग्राम तथा स्वतन्त्रता के पश्चात् रचनात्मक कार्यों एवं राजनीति में सक्रिय भाग लिया। वे सदैव अपने नेताओं का सम्मान करते थे, लेकिन यदि कभी कोई बड़े से बड़ा नेता भी उनके सम्मान को ठेस पहुँचाने की कोशिश करता है तो यह उनके लिये असह्य हो जाता है। इस पर वे मुँहफट जवाब देने में नहीं चूकते। वे पूर्णतः स्वाभिमानी पुरुष हैं। वर्तमान समय में उनकी अवस्था लगभग उन्नासी वर्ष की है लेकिन वे फिर भी एक कर्मठ समाज सेवी हैं और रचनात्मक कार्यों में लगे रहते हैं।

गोरखा-वीर खड़क बहादुर (सन् १८०१--१८३१ ई०)

> "जलियानवाला बाग में गोरखा-सेना ने देश की निहत्थी जनता पर गोलियाँ चला कर अपने माथे पर कलंक का टीका लगा लिया है। चूँकि मैं एक गोरखा हूँ, इसलिए नमक-सत्याग्रह में भाग लेकर अपनी जाति के इस पाप कर्म का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ, अतः आप मुझे डाण्डी मार्च में सम्मिलित होने की आज्ञा दे दें।"

खड़क बहादुर का जन्म सन् १६०१ में रायपुर (देहरादून) में हुआ था। इनके पिता का नाम रूपसिंह था। प्रारम्भिक शिक्षा रायपुर में पूरी कर खड़क बहादुर देहरादून डी० ए० वी० कॉलेज में पढ़ने लगे। तत्पश्चात् उच्च शिक्षा हेतु कलकत्ता चले गये।

सन् १६२७ में खड़क बहादुर कलकत्ता में एल-एल० बी० कर रहे थे। उन्हीं दिनों वहाँ हीरालाल नामक एक सेठ अपने व्यभिचारी कार्यों के लिए कुख्यात था। वह प्रायः कन्याओं का सतीत्व नष्ट कर देता था। एक बार मय्या रानी नामक सुन्दर नेपाली कन्या भी उसके चंगुल में फँस गई, जो सदैव सेठ के बँगले की चार दिवारी के अन्दर बन्द रहती थी। मय्या सेठ के अत्याचारों से दुःखी थी और मुक्त होना चाहती थी। एक दिन जब वह सेठ के बँगले की छत पर खड़ी थी, तो पास से गुजरते हुए रास्ते से उसने खड़क बहादुर को जाते हुए देखा। मय्या खड़क बहादुर को देखकर तुरन्त पहचान गई कि वह गोरखा है और वह उसकी मदद अवश्य करेगा, अतः मय्या ने सेठ के अत्याचारों एवं व्यभिचारी चरित्र से वर्णित पत्र लिखकर खड़क बहादुर की ओर फेंक दिया। खड़क बहादुर ने पत्र उठाया और अपने छात्रावास को चल दिये। वहाँ उन्होंने अपने सहपाठियों में मय्या द्वारा फेंके गये पत्र की चर्चा की। सहपाठियों ने खड़क बहादुर को उत्साहित किया कि वह व्यभिचारी सेठ को दण्ड देकर मय्या को उसके चंगुल से स्वतन्त्र करे। सहपाठियों की सम्मति पर खड़क बहादुर ने इस कार्य को करने का वचन दिया और उनसे एक खुकरी का प्रबन्ध करने को कहा, जो उन्हें तत्काल दे दी गई। तत्पश्चात् खड़क बहादुर ने एक पत्र लिखा, जिसमें सेठ के व्यभिचारी

चरित्र की भर्त्सना तथा मय्या की करुण कथा का उल्लेख किया गया था और अन्त में लिखा था—"सेठ, मैं तुम्हारे लिए मौत लेकर आया हूँ।" पत्र को लिफाफे में बन्द कर और वस्त्रों के अन्दर खुकरी छिपा कर खड़क बहादुर एक योजना निश्चित कर सेठ के कार्यालय में जा पहुँचे। उन्होंने चौकीदार से कहा कि मैं सेठ साहब से एक जरूरी काम से मिलना चाहता हूँ। चौकीदार ने सेठ को उनका सन्देश सुनाया। सेठ ने उन्हें मिलने की आज्ञा दे दी। खड़क बहादुर ने अन्दर पहुँचते ही सेठ को उसके अत्याचारों से वर्णित पत्र पढ़ने को दिया और पत्र पूरा पढ़ लिये जाने तक की प्रतीक्षा करते रहे। ज्योंही सेठ ने पूरा पत्र पढ़ा, गोरखा-वीर खड़क बहादुर ने अपनी खुकरी से व्यभिचारी सेठ की गर्दन पर तीखा प्रहार किया और सेठ का सिर धड़ से अलग हो गया। पास में बैठे सेठ के कर्मचारियों को खड़क बहादुर को पकड़ने का साहस न हो पाया। इसी बीच पुलिस को भी बुला लिया गया। खड़क बहादुर घटना-स्थल से भागे नहीं। पुलिस तुरन्त घटना-स्थल पर पहुँच गई, लेकिन खड़क बहादुर के रौद्ररूप को देखकर उसे भी उन्हें गिरफ्तार करने का साहस नहीं हो पाया। विवश होकर पुलिस अधिकारी ने खड़क बहादुर से कहा कि आप जो काम करना चाहते थे, वह तो कर चुके हो, अब तो खुकरी फेंक दो। खड़क बहादुर ने खुकरी फेंक दी और गिरफ्तार हो गये। सेठ की मृत्यु के अपराध में उन पर मुकदमा चला और आठ वर्ष की कारावास की सजा हुई।

खड़क बहादुर द्वारा किए गए सेठ के कत्ल का समाचार तत्कालीन मासिक पत्रिका 'चाँद' में प्रकाशित हुआ। खड़क बहादुर की आठ साल की सजा का समाचार जब भारतवर्ष की महिलाओं को विदित हुआ, तो महिलाओं ने उन्हें 'समाज-सुधारक' की उपाधि से विभूषित करते हुए उनकी गिरफ्तारी के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। महिलाओं ने सम्मेलन आयोजित कर खड़क बहादुर को जेल से मुक्त करने के लिए वायसराय के सम्मुख प्रस्ताव पेश किए। महिलाओं के आन्दोलन पर नजर करते हुए ब्रिटिश सरकार ने खड़क बहादुर को मुक्त करना ही उचित समझा। फलस्वरूप उन्हें केवल दो वर्ष की कारावास की सजा के पश्चात् ही मुक्त कर दिया गया।

मय्या एक रूपवती स्त्री थी। अधिकांश लोग अपने को उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होने से नहीं रोक पाते थे। सुन्दर वस्तु पर मुग्ध हो जाना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। खड़क बहादुर के जेल से मुक्त हो जाने पर मय्या नामक सुन्दरी उनसे विवाह करना चाहती थी, लेकिन खड़क बहादुर ने उससे कहा कि मैंने हमेशा तुम्हें अपनी बहिन की दृष्टि से देखा है, अतः मैं आपसे विवाह नहीं कर

सकता। उन्होंने मय्या की शादी किसी अन्य व्यक्ति से करवाकर बड़े भाई होने के दावे का उत्तरदायित्व बड़ी खूबी से पूरा किया।

सन् १९३० में गान्धी जी के नेतृत्व में सम्पूर्ण देश में नमक-सत्याग्रह की धूम मच गई। खड़क बहादुर ने साबरमती से डाण्डी तक की ऐतिहासिक यात्रा में एक सत्याग्रही के रूप में भाग लेने की लिए गान्धी जी के सम्मुख अपनी तीव्र अभिलाषा व्यक्त की, किन्तु इस सत्याग्रहियों के जत्थे में सम्मिलित होने के लिए सत्याग्रही के लिए यह शर्त आवश्यक थी कि वह कुछ निश्चित अवधि तक साबरमती आश्रम में रहा हो। खड़क बहादुर में यह योग्यता न होने के कारण गान्धी जी ने उन्हें साबरमती से डाण्डी तक जाने वाली सत्याग्रही-सेना में सम्मिलित करने से स्पष्ट इनकार कर दिया। इस पर खड़क बहादुर को अत्यन्त दुःख हुआ। उन्होंने अपना रक्त निकाल गान्धी जी को एक पत्र लिखा कि जलियानवाला बाग में गोरखा-सेना ने देश की निहत्थी जनता पर गोलियाँ चलाकर अपने माथे पर कलंक का टीका लगा लिया है। चूँकि मैं एक गोरखा हूँ, इसलिए नमक-सत्याग्रह में भाग लेकर अपनी जाति के इस पाप कर्म का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ, अतः आप मुझे डाण्डी मार्च में सम्मिलित होने की आज्ञा दे दें। गान्धी जी ने इस देश भक्त की प्रबल भावनाओं को देखते हुए उन पर लगा प्रतिबन्ध उठाकर, उन्हें सत्याग्रही-सेना में सम्मिलित होने की आज्ञा दे दी।

गान्धी की डाण्डी मार्च की सत्याग्रही-सेना में अठत्तर सत्याग्रही सैनिक सम्मिलित हुए थे, जिनमें गोरखा-वीर खड़क बहादुर भी थे। खड़क बहादुर ने एक उत्साही सत्याग्रही सैनिक के रूप में कार्य किया। उन्होंने बीस-पच्चीस गोरखों को लेकर, जिनमें पेंशन-प्राप्त सैनिक भी थे, धरासना के सरकारी नमक डिपो पर सत्याग्रह किया। पुलिस ने इस जत्थे को गिरफ्तार कर लिया। सन् १९३१ में गान्धी-इर्विन समझौते की शर्तों के आधार पर वे जेल से रिहा हुए।

खड़क बहादुर ने देश-सेवा हेतु अपना जीवन महात्मा गान्धी को अर्पित कर दिया था। जेल से रिहा हो जाने के पश्चात् उन्होंने गान्धी जी के आदेशानुसार हरियाणा प्रान्त के जिलों में, जहाँ दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था, सेवा-कार्य किए। उन्होंने गान्धी जी के साथ दिल्ली की हरिजन बस्तियों में भी सेवा-कार्य किए।

खड़क बहादुर को ब्रिटिश सरकार की अत्याचारी नीति से सख्त नफरत थी, अतः उन्होंने राजभक्त गोरखा-पल्टन में काँग्रेस की देशप्रेम की भावनाओं का प्रचार कर, उन्हें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उकसाया। उनके इस कार्य को देखकर ब्रिटिश सरकार के अधिकारी उनसे रुष्ट थे और उन्हें सरकार द्वारा गोली से उड़ा देने की चर्चा जन-साधारण में व्याप्त थी। सन् १९३१

के बाद खड़क बहादुर का कोई पता नहीं चला। सम्भवतः सरकार द्वारा उन्हें गोली से उड़ा दिया गया होगा।

कहा जाता है कि खड़क बहादुर एक धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, अतः यह भी सम्भव हो सकता है कि सांसारिक कार्यों से विरक्ति उत्पन्न हो जाने के कारण वे साधू बन गये हों।

अतः कहा जा सकता है कि खड़क बहादुर एक निर्भीक, स्वतन्त्रता प्रिय समाज-सेवी थे। उनमें समाज-सुधारक के सभी गुण विद्यमान थे और उन्होंने भारतवर्ष की स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया।

गढ़केसरी अनुसुयाप्रसाद बहुगुणा

अनुसुयाप्रसाद बहुगुणा का जन्म नन्दप्रयाग के निवासी सेठ गोकुलानन्द बहुगुणा के घर में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा नन्दप्रयाग में ही हुई। इसके बाद मिशन स्कूल चोपड़ा (पौड़ी) में अध्ययन हेतु चले गये। विद्यार्थीकाल से ही एक अच्छे नेता के गुण अनुसुयाप्रसाद में दिखायी देने लगे थे। जब वे पौड़ी मिशन स्कूल के छात्र थे, तब उन्होंने वहाँ एक 'युवक संघ' स्थापित किया और उसके मंत्री के पद पर रह कर छात्रों में समाज सेवा की भावना पैदा की। सन् १९१० ई० में बहुगुणा जी ने हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर रामजे कॉलेज अल्मोड़ा में प्रवेश लिया। सन् १९१२ में वहाँ से इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण कर उच्च शिक्षा हेतु म्योर सेण्ट्रल कॉलेज, इलाहाबाद में प्रवेश किया। सन् १९१४ में वहाँ से बी० एस-सी० की परीक्षा तथा १९१६ में कानून की परीक्षा उत्तीर्ण की।

१९१६ में वकालत की शिक्षा प्राप्त कर बहुगुणा जी अपने घर लौटे। उनके पिता चाहते थे कि अनुसुयाप्रसाद नौकरी करें तथा उन्हें नायब तहसीलदार का पद तत्काल मिल रहा था, लेकिन उन्होंने देश-सेवा हेतु नौकरी न करने का दृढ़ संकल्प किया और चमोली में वकालत प्रारम्भ कर दी। वे एक सफल वकील थे। फौजदारी के मुकदमों में लोग उनका लोहा मानते थे। कुमाऊँ का कमिश्नर भी उनके तर्कों से बहुत प्रभावित था।

अनुसुयाप्रसाद बहुगुणा ब्रिटिश गढ़वाल में जनता को संगठित कर अंग्रेजों की अत्याचारी नीति के विरुद्ध आन्दोलन चलाना चाहते थे। इसी समय (१९१९) मुकन्दीलाल बैरिस्टर इंग्लैण्ड से शिक्षा प्राप्त कर गढ़वाल आये। उनकी देश-भक्ति की भावनाओं से बहुगुणा जी बेहद प्रभावित हुए। सन् १९१९ में बहु-गुणाजी ने अमृतसर में हुए काँग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया। अधिवेशन से लौटकर जब वे गढ़वाल पहुँचे तो उन्होंने ब्रिटिश गढ़वाल में काँग्रेस कमेटी की स्थापना कर जनता में जागृति उत्पन्न करने की चेष्टा की।

सन् १९२१ में ब्रिटिश गढ़वाल में कुली उतार, कुली बेगार और बर्दायश नामक कुप्रथाओं के विरुद्ध तथा कुछ समय पश्चात् जंगलात कानून में सरकारी हस्तक्षेप के विरुद्ध जन-आन्दोलन तीव्र गति से भड़क उठा। दोनों आन्दोलनों में

बहुगुणा जी ने जनता का सफल नेतृत्व किया, फलस्वरूप कुली उतार, बेगार व बर्दायिश नामक कुप्रथाओं का अन्त हो गया और जंगलात कानून में कुछ सुधार कर जनता को सुविधाएँ प्रदान कर दीं। मई १९२१ में श्रीनगर में 'गढ़वाल नवयुवक सम्मेलन' नामक संगठन की स्थापना हुई। बहुगुणा जी उसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। सन् १९२१ में ही आप 'जिला कांग्रेस कमेटी गढ़वाल' के मंत्री भी चुने गये।

सन् १९३० में ब्रिटिश गढ़वाल में भी नमक-सत्याग्रह ने जोर पकड़ा। बहुगुणा जी ने इस आन्दोलन में भी वहाँ की जनता का नेतृत्व किया। चमोली की एक जनसभा में उनकी डिप्टी कमिश्नर इबटसन से झड़प हो गयी। आन्दोलन की उग्रता देखकर सरकार ने चमोली में धारा १४४ लगा दी। बहुगुणा जी ने उसका उल्लंघन कर एक प्रभावशाली भाषण दिया, फलस्वरूप उन्हें गिरफ्तार किया गया और उन्हें चार माह तक जेल की यातनाएँ सहन करनी पड़ीं। डिप्टी कमिश्नर इबटसन ने स्वयं जेल जाकर बहुगुणा जी के साथ दुर्व्यवहार किया।

सन् १९३१ में जिला बोर्ड के चुनाव हुए और अनुसुयाप्रसाद बहुगुणा चेयरमैन चुने गये। उन्होंने उस पद पर १९३५ ई० तक कार्य किया। इस कार्य में उन्होंने सार्वजनिक निर्माण के कार्य करवाये। सन् १९३४ में तत्कालीन वायसराय की पत्नी लेडी विलिंगडन जब ब्रिटिश गढ़वाल आयी तो वह भी बहुगुणा जी के व्यक्तित्व से प्रभावित हुई थी।

सन् १९३७ के प्रान्तीय असेम्बली के चुनाव में बहुगुणा जी पौड़ी-चमोली तहसील से कांग्रेस के रूप में संयुक्त प्रान्त विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुए।

बहुगुणा जी एक धार्मिक व्यक्ति थे। उन्होंने बद्रीनाथ मन्दिर की कुव्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाई और १९३९ ई० में प्रान्तीय विधान सभा में 'श्री बद्रीनाथ मन्दिर प्रबन्ध कानून' पास करवाया। सन् १९३८ में श्रीनगर के राजनैतिक सम्मेलन में भाग लेने जवाहरलाल नेहरू और विजयलक्ष्मी पण्डित गढ़वाल आये। गढ़वाल में उनका शानदार स्वागत किया गया। भारत माता की स्वतन्त्रता के लिए बहुगुणा जी की भावनाओं और अथक परिश्रम को देखकर नेहरू जी भी बेहद प्रभावित हुए।

अप्रैल १९४० में कर्णप्रयाग, चमोली तहसील में राजनैतिक सम्मेलन हुआ। बहुगुणा जी को सभापति चुना गया। व्यक्तिगत सत्याग्रह के एक सक्रिय कार्यकर्ता होने के कारण १४ दिसम्बर को चमोली में उन्हें गिरफ्तार करके एक वर्ष की कारावास की सजा हुई। १ सितम्बर १९४१ ई० को बहुगुणा जी की पत्नी का निधन हो गया, अतः सरकार ने उन्हें मुक्त कर दिया। जेल में ही

उनका स्वास्थ्य खराब हो गया था जो लम्बी अवधि तक ठीक न हो सका, इसी कारण बहुगुणा जी सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग नहीं ले सके। ११ मार्च १९४३ ई० में उनका देहान्त हो गया।

अनुसुयाप्रसाद बहुगुणा एक निस्स्वार्थ, निर्भीक और प्रभावशाली राष्ट्रीय नेता थे। उन्होंने ब्रिटिश गढ़वाल जैसे पिछड़े क्षेत्र में जन-जागृति उत्पन्न कर उसका सम्बन्ध देश के आन्दोलनों से स्थापित कर दिया। वे एक ओर जहाँ राज-नैतिक नेता थे, वहीं दूसरी ओर एक समाजसेवी व धार्मिक व्यक्ति भी थे। दुःख है कि यह महान् देशप्रेमी स्वतन्त्र भारत में स्वच्छन्द साँस न ले सका और स्वतन्त्रता के सपने वास्तविकता में परिणित होने से पूर्व ही देवदूत इनके लिए पैगाम लेकर आ गये।

शान्तिलाल त्रिवेदो (जन्म सन् १९०५ ई०)

"सदाचार का प्रचार और भ्रष्टाचार को भगाने का कार्य भाषणों और नारों से नहीं बल्कि स्वयं सत्य-निष्ठा के साथ सद्आचरण बरतने पर सम्भव है।"

शान्तिलाल त्रिवेदी का जन्म सन् १९०५ में राजकोट (गुजरात) में जयशंकर त्रिवेदी के घर में हुआ था। सौराष्ट्र में विभिन्न शिक्षा संस्थाओं में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। जब शान्तिलाल त्रिवेदी इण्टरमीडिएट में ही पढ़ते थे, उसी समय देश में असहयोग आन्दोलन चला। आन्दोलन ने इस युवक के राष्ट्रप्रेमी हृदय को भी छू लिया, अतः शान्तिलाल साबरमती आश्रम में चले गये। सन् १९२१-२४ तक निरन्तर इसी आश्रम में रहे। तत्पश्चात् सन् १९२५-२८ तक भावनगर के निकट आश्रम में रहे।

सन् १९२४ में महात्मा गान्धी के आदेशानुसार शान्तिलाल त्रिवेदी ११ स्वयंसेवकों की टोली के उपाध्यक्ष बनकर नागपुर गये। साबरमती से नागपुर तक की यात्रा इस टोली ने पैदल ही की, क्योंकि सरकार ने स्वयंसेवकों को टिकट दिये जाने पर रोक लगा दी थी। इस टोली ने पैदल यात्रा को लाभप्रद बनाने के उद्देश्य से रास्ते में पड़ने वाले गाँवों में सभाएँ आयोजित कर जनता में राष्ट्रीय भावनाएँ जागृत करने के प्रयत्न किये।

अगस्त, १९२८ ई० में त्रिवेदी जी गान्धी जी के आदेश पर रचनात्मक कार्य करने के लिए अल्मोड़ा आये। १९२९ ई० में महात्मा गान्धी ने कुमाऊँ के अनेक स्थानों की यात्रा की। इस यात्रा में शान्तिलाल उनके साथ रहे।

सन् १९३० में अल्मोड़ा में झण्डा-सत्याग्रह हुआ। मोहन जोशी और शान्तिलाल ने स्वयंसेवकों के जुलूस का नेतृत्व किया, फलस्वरूप उन पर गोरखा सैनिकों द्वारा लाठियों से प्रहार किया गया। शान्तिलाल की पसली तोड़ दी गयी और एक डण्डा सिर में मार कर मूच्छित अवस्था में चिकित्सालय भेज दिया गया। इसके बाद त्रिवेदी जी अल्मोड़ा में खादी विभाग के निरीक्षक रहे। उन्होंने अपने अथक परिश्रम से चरखा एवं खद्दर का प्रचार किया।

सन् १९३७ में शान्तिलाल त्रिवेदी के सतत् प्रयत्नों से बोरारौ क्षेत्र के चनौदा
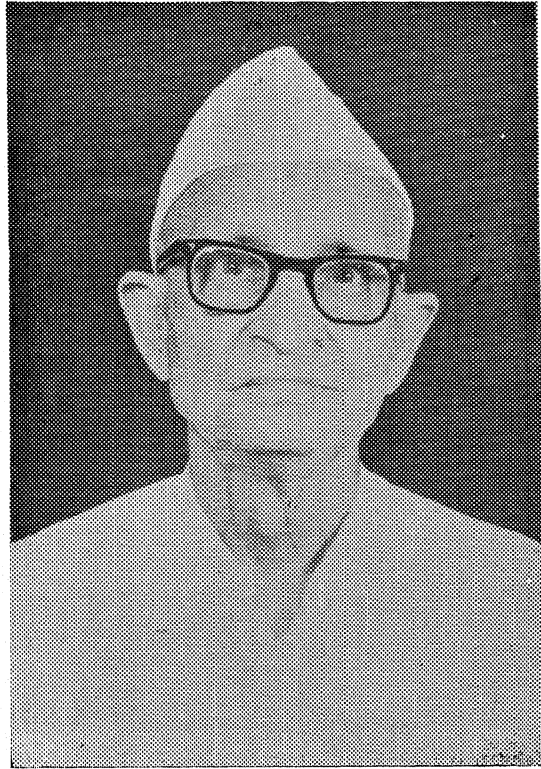
प्रचारक

गान्धी भक्त श्री शान्तिलाल त्रिवेदी

नामक स्थान पर गान्धी आश्रम की स्थापना हुई। यह आश्रम कुमाऊँ में खादी एवं ऊनी कपड़ों के प्रचार में अग्रगण्य रहा है। इससे जनसाधारण में खादी प्रचार के साथ-साथ घरेलू उद्योगों को भी बल मिला। चनौदा आश्रम के कार्यकर्ता राष्ट्रप्रेमी थे। उन्होंने आश्रम के आस-पास के लोगों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत कर दी, फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने हस्तक्षेप कर आश्रम को बन्द करवा दिया और उसका सामान नीलाम कर दिया। आश्रम के सभी कार्यकर्ताओं को कारावास में डाल दिया गया।

आश्रम के अन्य कार्यकर्ताओं के साथ शान्तिलाल को भी गिरफ्तार किया गया। अंग्रेजी सरकार के अधिकारी ने त्रिवेदी जी से कहा–"यदि आप इसी समय कुमाऊँ छोड़कर अपने जन्म-स्थान गुजरात चले जायँ तो मैं आपको मुक्त कर दूँगा, किन्तु स्वतन्त्रता के इस अमर सेनानी ने निर्भीकता से उत्तर दिया–"हम अंग्रेजों से कहते हैं कि भारत छोड़ो, आप हमसे कहते हैं कि हिमालय छोड़ो। हिमालय हमारा है, हम इसे क्यों छोड़ें ?"

पन्द्रह माह कारावास में रहने के पश्चात् त्रिवेदी जी को जब १९४३ ई० में जेल से रिहा किया गया, तो उन्होंने गुजरात न जाकर कुमाऊँ को ही अपना कार्य-क्षेत्र बनाये रखा। सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में कुमाऊँ के लोगों ने महत्वपूर्ण भाग लिया। सरकार ने दमन नीति अपना कर अनेक लोगों को जेल में डाल दिया। ऐसी स्थिति में परिवारों को सांत्वना एवं यथाशक्ति सहायता प्रदान करने के लिए शान्तिलाल ने सरला बहिन के साथ मिलकर बोरारौ, कत्यूर और सालम के गाँवों में जाकर गिरफ्तार स्वयंसेवकों के घरों की देखभाल करने का आयोजन सम्पन्न किया। २० दिसम्बर, १९४३ ई० को त्रिवेदी जी को पुनः गिरफ्तार किया गया और फरवरी, १९४४ को जेल से मुक्त किया गया। इसके बाद वे अपने घर गुजरात चले गये। जब शान्तिलाल अपने घर से लौटकर अल्मोड़ा आ रहे थे कि डिप्टी कमिश्नर ने उनके अल्मोड़ा प्रवेश पर रोक लगा दी, अतः वे जिले से बाहर रहकर देशसेवा का कार्य करने लगे। त्रिवेदी जी ने स्वराज्य का सन्देश जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए १५००० मील पैदल पर्यटन किया।

शान्तिलाल की देश-सेवा एवं स्वतन्त्र विचारधारा से महात्मा गान्धी काफी प्रभावित थे। शान्तिलाल अपने हृदय की भावनाओं को प्रकट करने के लिए गान्धी जी को लम्बा पत्र लिखा करते थे, अतः गान्धी जी उन्हें 'लम्बे खत वाला' के नाम से भी सम्बोधित करते थे।

स्वतन्त्रता के पश्चात् शान्तिलाल ने जनहित के कार्यों में हाथ बँटाया।

सन् १९५१-५४ ई० तक गरूड़ व शैल ग्राम (जिला अल्मोड़ा) में पेयजल विवाद हल न होने के कारण आत्मशुद्धि के लिए शान्तिलाल ने ३ जुलाई से ७ जुलाई तक उपवास किया। यह उपवास उपर्युक्त दोनों पक्षों में मनमुटाव समाप्त करने के लिए किया गया जिसमें त्रिवेदी जी को काफी सफलता मिली। राष्ट्रीय आन्दोलन का यह वीर अपनी वृद्धावस्था में सुख से चैन न लेकर आज भी हिमालय की गोद में बसे अल्मोड़ा में रहकर महात्मा गान्धी एवं विनोवा भावे के आदर्श मार्गों पर चलकर सामाजिक तथा रचनात्मक कार्यों में जुटा हुआ है।

क्रान्तिकारी भवानीसिंह रावत

"क्रान्तिकारियों का बलिदान उस तेल के समान है जिससे परिवर्तन का दीपक जलता है। हर युग में नौजवान लोग उन लोगों से प्रेरणा पाते हैं, जो ऊँचे आदर्शों की रक्षा के लिए अपने जीवन को उत्सर्ग कर देते हैं।"

भवानीसिंह का जन्म ग्राम पंचूर, जिला पौड़ी गढ़वाल में एक फौजी कप्तान के घर में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा लैंसडौन छावनी में हुई। वहाँ अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति से अचानक उनकी भावनाओं में परिवर्तन हुआ। इसके बाद उनकी शिक्षा मुरादाबाद, चन्दौसी और सराय रोहिला की शिक्षण संस्थाओं में हुई। जवाहरलाल नेहरू की देश-सेवा के भाषण से प्रभावित होकर उन्होंने राजनैतिक जीवन में प्रवेश किया। उनके उग्र क्रिया-कलापों को देखकर क्रान्तिकारी कैलाशपति एवं जयदेव कपूर ने उनसे सम्पर्क स्थापित किया और क्रान्तिकारी भावनाओं को प्रज्ज्वलित करने वाला साहित्य उन्हें पढ़ने को दिया। अब उन्होंने हिंसात्मक कार्यों के सिद्धान्त में विश्वास करना प्रारम्भ कर दिया तथा समझ लिया कि स्वराज्य हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा ही सम्भव है।

भवानीसिंह की बढ़ती हुई क्रान्तिकारी भावना को देखकर उन्हें 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ' का सदस्य बनाया गया। इसी मध्य भवानीसिंह घर आये और गिरफ्तार होते-होते बाल-बाल बचे। दुर्भाग्यवश जयदेव कपूर जो बम बनाते हुए पकड़े गये थे, उनकी जेब से भवानीसिंह को घर से बुलाने का एक पत्र पुलिस के हाथ लगा। यद्यपि छानबीन हुई, लेकिन फौजी कप्तान के पुत्र होने के कारण पुलिस शान्त रही।

चन्द्रशेखर आजाद से भेंट

दिल्ली एसेम्बली बमकाण्ड के लिए दिल्ली में क्रान्तिकारियों की एक बैठक हुई, जिसमें भवानीसिंह को आदेश मिला कि उन्हें एक पत्र चन्द्रशेखर आजाद को देने कानपुर जाना है। भवानीसिंह दिल्ली से पत्र लेकर कानपुर आजाद को देने गये व उनसे मिले। फिर आजाद दिल्ली आये व एसेम्बली में ८ अप्रैल, १९२९ ई० को बम फेंका गया।

क्रान्तिकारियों के पास धन का अभाव होने पर भवानीसिंह ने अपने साथियों के साथ दिल्ली के चाँदनी चौक में स्थित गड़ोदिया स्टोर से तेरह हजार रुपये सफलता पूर्वक लूट लिये। तत्पश्चात् चन्द्रशेखर आजाद अपने साथियों को पिस्तौल चलाने का प्रशिक्षण देने भवानीसिंह के साथ गढ़वाल आये। सरकार ने भवानीसिंह को पकड़वाने के लिए जगह-जगह उनकी फोटो चिपका दी और भेद देने वाले को पाँच सौ रुपये इनाम देने की घोषणा की। परन्तु भवानीसिंह पकड़े नहीं गये। इसके बाद उन्होंने फिर चन्द्रशेखर आजाद से भेंट की। सन् १९३० में आजाद के शहीद हो जाने पर क्रान्तिकारी पार्टी में शोक छा गया। इसके पश्चात् उन्होंने अपने क्रान्तिकारी साथियों से रूस जाने की इच्छा व्यक्त की, लेकिन क्रान्तिकारी साथियों की सलाह पर उन्हें बम्बई शाखा के क्रान्तिकारियों के पास भेजा गया और वहाँ भवानीसिंह कामरेड रनदेव के मकान में रहने लगे, तत्पश्चात् वहीं पर उर्दू पत्रिका के सम्पादक मुहम्मद इस्मायल के घर मुसलमान के वेष में रहने लगे। परन्तु पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और दिल्ली लाकर स्पेशल मजिस्ट्रेट की अदालत में उन्हें पेश किया गया। भवानीसिंह ने अपना व अपनी पार्टी का कोई भेद नहीं बताया, फलस्वरूप कोई प्रमाण न मिलने पर उन्हें दिल्ली से बाहर जाने का आदेश देकर रिहा कर दिया गया। इसके बाद भवानीसिंह अपनी जन्मभूमि गढ़वाल आये और गढ़वाल के राजनैतिक चेतना के केन्द्र दोगड्डा में रहने लगे, जहाँ गुप्तचर उनके कार्यकलापों व गतिविधियों पर दृष्टि रखते थे। स्वतन्त्रता के पश्चात् भवानीसिंह 'पंचायत निरीक्षक' के पद पर चौदह वर्ष तक कार्य करते रहे। इसके बाद उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी के टिकट पर उत्तर प्रदेश विधान सभा का चुनाव लड़ा, लेकिन गढ़वाल में कम्युनिस्ट विचारधारा का विरोध होने के कारण असफल रहे। भवानीसिंह ने अखिल भारतीय क्रान्तिकारी दल का सक्रिय सदस्य रहकर उत्तराखण्ड का नाम उज्ज्वल किया। आजकल भवानीसिंह दयनीय स्थिति से गुजर रहे हैं, फिर भी दोगड्डा में 'आजाद स्मारक' बनवाने में निरन्तर प्रयत्नशील रहे। सरकार ने उनके अनुरोध पर सन् १९७३ में दोगड्डा में चन्द्रशेखर आजाद स्मारक स्थापित कर दिया है।

इन्द्रसिंह गढ़वाली (सन्१९०५–१९५२ ई०)

क्रान्तिकारी इन्द्रसिंह गढ़वाली का जन्म लगभग सन् १९०५ ई० में टिहरी में हुआ था। इन्द्रसिंह धार्मिक ढोंग व पाखण्ड के घोर विरोधी, स्वभाव से उग्र और व्यवहार में सरल थे। सन् १९२८ ई० से १९३० ई० तक इन्द्रसिंह अमृतसर में रहे। वहाँ वे 'नौजवान भारत सभा' में कार्य करते और जीविकोपार्जन हेतु न्यूजपेपर ऐजेंसी में कार्य करते थे। सन् १९२९ ई० में अमृतसर काँग्रेस में उन्होंने एक सक्रिय स्वयंसेवक के रूप में कार्य किया। सन् १९२९ ई० में इन्द्रसिंह बंगाल के कुछ क्रान्तिकारियों से मिले। सन् १९३० ई० के दिसम्बर माह में इन्द्रसिंह महान् क्रान्तिकारी शम्भूनाथ आजाद के साथ दिल्ली से बनारस हथियार का बंडल ले जाने के प्रयास में असफल हो गये और पकड़े गये। जब उन्होंने अपना व पार्टी का भेद नहीं दिया, तो उन्हें दिल्ली के काश्मीरी गेट थाने में पन्द्रह दिनों तक भारी यन्त्रणा देने के पश्चात् सात वर्ष की सख्त कैद की सजा दी गयी, जो लाहौर हाइकोर्ट में अपील करने पर तीन वर्ष की हो गयी।

मुल्तान से तीन वर्ष की सजा पाकर जब इन्द्रसिंह रिहा हुए, तो क्रान्तिकारी पार्टी ने दक्षिण भारत में कार्रवाई (Action) हेतु एक पार्टी का गठन किया, जिसमें इन्द्रसिंह प्रथम पंक्ति में आये। सन् १९३३ ई० में अपने साथी रोशन-लाल मेहरा के साथ वे मद्रास पार्टी के हेडक्वार्टर पर पहुँचे, जहाँ उन्हें पंजाब, ग्वालियर, दिल्ली, कलकत्ता से सम्पर्क स्थापित करने का कार्य सौंपा गया। रोशनलाल मेहरा ने जब मद्रास में अंग्रेज गवर्नर को मारने की योजना बनाई, तो गवर्नर की यात्रा सम्बन्धी गुप्त सूचनाएँ देने के लिए इन्द्रसिंह 'प्रेम प्रकाश मुनि' के नाम से साधू बन कर गवर्नर की यात्रा सम्बन्धी सभी गुप्त सूचनाएँ देते रहे। बाद में क्रान्तिकारी पार्टी में 'प्रेम प्रकाश मुनि' के नाम से ही प्रसिद्ध हो गये।

४ मई, १९३२ ई० में दोपहर को इन्द्रसिंह को मद्रास नगर पार्टी के हेड-क्वार्टर में सी० आई० डी० एवं हथियारबन्द पुलिस ने घेर लिया। ऐसी स्थिति में उन्होंने गुप्त कागजात जला दिये और छ: राउण्ड पिस्तौल व तीन साथियों सहित मकान की छत पर चढ़ गये। इन चारों क्रान्तिकारियों ने मद्रास की पूरी पुलिस के साथ पाँच घंटे तक बहादुरी के साथ संघर्ष किया। दोनों ओर से अन्धाधुन्ध गोलाबारी हुई। शहर में आतंक छा गया। अंग्रेजों ने सेना की

टुकड़ी बुलवायी, परन्तु संघर्ष को जारी रखने के लिए इन क्रान्तिकारियों के पास गोलियाँ समाप्त हो चुकी थीं। अब इन लोगों के पास केवल एक बम बचा था, उसे फेंककर चारों ने भागने का असफल प्रयास किया।

इन्द्रसिंह एक पुलिस इंसपेक्टर के घर में अन्धकार होने की प्रतीक्षा में छिप गये। इन्द्रसिंह के साथी गोविन्द बहल को जो निहत्थे एक मकान में छिपे थे, मद्रास के पुलिस कमिश्नर ने गोलियों से भून डाला। अब पुलिस इन्द्रसिंह की खोज में दौड़ी। जब इन्द्रसिंह भागे तो पकड़ लिये गये। उन पर मद्रास हाइकोर्ट में मुकदमा चलाया गया और उन्हें बीस वर्ष की सजा हुई। इन्द्रसिंह की उग्रता देखकर उन्हें बिल्लारी सैण्ट्रल जेल की फाँसी की कोठरी में बन्द किया गया। उनके पहरे पर जेल के वार्डन रहा करते थे। इन्द्रसिंह एवं उनके साथी बनतासिंह जेल वार्डन को भी क्रान्तिकारी गुट में सम्मिलित कर जेल की फाँसी की कोठरी से रहस्यमय ढंग से भाग गये, परन्तु कुछ दिनों बाद पकड़े गये और अंडमान द्वीप की सेकुलर जेल में भेज दिये गये। सन् १९३७ ई० में इन्द्रसिंह ने भी अंडमान में राजबन्दियों के साथ भूख हड़ताल की थी, फलतः उन्हें राजबन्दियों की वापसी के प्रथम समुदाय में लाहौर सैण्ट्रल जेल में भेज दिया गया। सन् १९३९ ई० में इन्द्रसिंह को लाहौर सैण्ट्रल जेल से रिहाकर पंजाब प्रान्त से बाहर जाने का आदेश दिया गया। सन् १९३९ में ही उन्हें पुनः गिरफ्तार कर देवली कैम्प में नजरबन्द किया गया और फिर १९४५ ई० में रिहा किये गये। रिहा होकर इन्द्रसिंह मेरठ सी० पी० आई० कार्यालय में कार्य करने लगे। क्रान्तिकारी शम्भूनाथ आजाद का कहना है कि सन् १९५२ ई० तक इन्द्रसिंह वहीं कार्य करते थे, उसके बाद अचानक वह अदृश्य हो गये और उनका अभी तक कोई पता नहीं है।

बच्चूलाल गढ़वाली (सन् १६०६–१६३८ ई०)

बच्चूलाल का जन्म सन् १६०६ ई० में पौढ़ी-गढ़वाल में हुआ था। बच्चूलाल अमृतसर में रहते थे और वहाँ एक दुकान पर नौकरी करते थे। उन्हें पहलवानी का बड़ा शौक था। क्रान्तिकारी शम्भूनाथ आजाद से उनका सर्वप्रथम परिचय १६२६ ई० में लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में हुआ था। शम्भूनाथ आजाद ही उनकी भावनाओं से प्रभावित होकर उन्हें क्रान्तिकारी दल में लाये।

१६३१ ई० में अम्बाला-मनौली काण्ड केस में बच्चूलाल गढ़वाली भी पकड़े गये, लेकिन सेशन जज ने उन्हें मुक्त कर दिया। इसके पश्चात् बच्चूलाल ने अपने को दक्षिण भारत की 'एक्शन टीम' के लिए प्रस्तुत किया। रोशनलाल मेहरा के साथ वे मद्रास पहुँचे। क्रान्तिकारियों को जब धन की आवश्यकता पड़ी, तो ऊटी बैंक को लूटकर धन एकत्र करने की योजना बनाई गई। २८ अप्रैल, १६३३ को दोपहर में कुछ क्रान्तिकारी एक टैक्सी में बैठ फौजी अधिकारियों की वर्दी पहनकर व हथियारों सहित ऊटी बैंक में पहुँच गये, जहाँ सशस्त्र पहरा लगा था। पूर्व निश्चित योजना के अनुसार ऊटी बैंक पर अधिकार कर लिया गया। बच्चूलाल को बैंक के मुख्य द्वार पर पहरा देना था। बच्चूलाल का चेहरा गोल व मोटा था। वे अंग्रेजी वेशभूषा में सुन्दर व प्रभावशाली लगते थे। डकैती के समय बैंक के बाहर विशाल जनसमूह एकत्र हो गया था और दो पुलिस के सिपाही बच्चूलाल के समीप जानकारी हेतु आये, जिन्हें बच्चूलाल ने बन्दूक के कुन्दे से मारकर गिरा दिया। बैंक को लूटकर सभी क्रान्तिकारी टैक्सी में सवार होकर भाग निकले। २६ अप्रैल को बच्चूलाल अपने सहयोगियों के साथ ई० रोड रेलवे जंकशन पर पहुँचे, जहाँ उनकी मुठभेड़ कई हथियारबन्द सिपाहियों से हुई परन्तु वे वहाँ से भी भाग निकले।

३० अप्रैल, १६३३ ई० को बच्चूलाल एक जंगल में भूखे-प्यासे बैठे हुए थे कि एक पुलिस दस्ता उनकी ओर आया तब बच्चूलाल ने पिस्तौल पुलिस वालों की ओर फेंकते हुए कहा—"तुम भारतीय हो, तुमको मारना हमारा धर्म नहीं है, तुम भले ही हमें मार डालना।" पुलिस उन्हें गिरफ्तार करके ले गयी।

इसके पश्चात् बच्चूलाल को अड़तीस साल की काले पानी की सजा हुई और उन्हें अण्डमान भेज दिया गया। वहाँ छः माह पश्चात् ही वे मानसिक रूप से

विक्षिप्त हो गये। अण्डमान में वे दिन में ६-७ बार स्नान करते और अपने शरीर से रक्त निकाल कर उसे पानी में मिलाकर सूर्य को अर्घ्य चढ़ाते और किसी से बात नहीं करते थे।

सन् १९३८ में बच्चूलाल शम्भूनाथ आजाद के साथ भारत लौटे फिर नैनी जेल से बनारस जेल और फिर मानसिक चिकित्सा हेतु अस्पताल में भेज दिए गये। इसके पश्चात् बच्चूलाल कहाँ गये, इसका कोई पता नहीं है।

आजाद हिन्द फौज के वीर सैनिक

"भारत के सैनिको, दूर---नदियों, जंगलों और पहाड़ों के पार हमारा देश है। अब हम वहाँ जा रहे हैं, जहाँ की मिट्टी के हम बने हैं। हिन्दुस्तान तुम्हें पुकार रहा है; हिन्दुस्तान की राजधानी तुम्हें पुकार रही है; अड़तीस करोड़ भारतीय तुम्हें पुकार रहे हैं; खून को खून बुला रहा है। उठो, हथियार उठाओ। दिल्ली का रास्ता ही आजादी का रास्ता है। दिल्ली चलो---जयहिन्द !

"सहयोगियो इस संकट की घड़ी में मुझे केवल आदेश का एक शब्द कहना है---उत्सर्ग ही अनिवार्य हो तो वह शानदार होना चाहिए......

"मैं चाहता हूँ कि मेरी भाँति आप भी इस बात में विश्वास रखें कि प्रकाश की किरण फूटने से पूर्व सघन अन्धकार ही रहता है।"

ये शब्द थे भारत माता के वीर पुत्र नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के, जिन्होंने आजाद हिन्द फौज के मतवाले वीर सैनिकों के हृदय में देश-भक्ति की अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी और उन्हें देश की स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर समर्पित हो जाने के लिए प्रेरित किया।

महेन्द्रसिंह बागड़ी

"मैं खुद कायर अंग्रेजों के सामने हथियार डालने का ख्याल भी नहीं कर सकता। मैंने अन्तिम समय तक लड़ने का निर्णय किया है।"

आजाद हिन्द फौज में अद्भुत वीरता प्रदर्शित करने वाले महेन्द्रसिंह बागड़ी का जन्म सन् १८८६ ई० में अल्मोड़ा जिले की पट्टी मल्ला दानपुर के बगड़ नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम धनसिंह बागड़ी था। सन् १९१४ ई० में आप लैंसडौन जाकर सेना में भर्ती हो गये और २।१८ वीं रायल गढ़वाल राइफिल्स में सूबेदार के पद तक पहुँच गये।

मलाया में आजाद हिन्द फौज के गठित होते समय उन्हें उसमें कैप्टन का पद मिला। उन्हें सेकिण्ड इन्फेंटरी रेजिमेण्ट की तीसरी बटालियन का कमाण्डर नियुक्त किया गया। फरवरी १९४५ ई० में महेन्द्र बागड़ी को पोपा जाकर शत्रु-सेना की बाढ़ को रोकने का आदेश मिला। ब्रिटिश, अमरेकिन व ब्रिटिश-भारतीय सेनाएँ आसाम के रास्ते बर्मा में प्रविष्ट हो चुकी थीं और विजय प्राप्त करती हुई आगे बढ़ती आ रही थीं। ऐसी स्थिति में उन्हें रोकना कठिन था। ३० मार्च, १९४५ ई० में काब्यू नामक स्थान पर बागड़ी ने असाधारण वीरता दिखाई। २२ अप्रैल, १९४५ ई० को टौंडविंगी से लगभग बीस मील दूर दक्षिण की ओर शत्रु टैंकों ने कैप्टन बागड़ी को घेर लिया। कैप्टन बागड़ी के पास इतनी शक्ति नहीं थी कि शत्रु का मुकाबला किया जा सके। अतः कैप्टन बागड़ी के सम्मुख केवल दो मार्ग थे—या तो वे शत्रु के समक्ष आत्मसमर्पण कर दें या निराशा पूर्ण युद्ध करके शानदार मौत को गले लगा लें। कप्तान बागड़ी ने अपने सैनिकों को एकत्रित करके कहा—"हमें शत्रु के टैंकों ने घेर लिया है। हमें या तो लज्जाजनक ढंग से आत्मसमर्पण कर देना चाहिए या एक सच्चे सैनिक की भाँति वीरतापूर्वक लड़ते-लड़ते जान देनी चाहिए।" उन्होंने पुनः कहा—"मैं खुद कायर अंग्रेजों के सामने हथियार डालने का ख्याल भी नहीं कर सकता। मैंने अन्तिम समय तक लड़ने का निर्णय किया है।"

यह कहकर उन्होंने अपने एक सौ सैनिकों को लेकर शत्रु के टैंकों पर हमल कर दिया। हाथ में दस्तीबम और भरी हुई बोतलें लेकर वे शत्रु की मोटरों पर

टूट पड़े और शत्रु के टैंक और बख्तरबन्द मोटर को तोड़ डाला। दूसरे टैंक पर हमला करते-करते कप्तान बागड़ी को गोली लगी और वे सदा के लिए गहरी निद्रा में डूब गये। जिन अंग्रेजों ने कप्तान बागड़ी की लड़ाई देखी वे उनकी वीरता एवं निडरता से चकित रह गये। वे जानना चाहते थे कि कप्तान बागड़ी ने अपने सम्मुख कठिनाइयों को देखते हुए भी शक्तिशाली शत्रु की सेना पर आक्रमण कर मृत्यु का आह्वान क्यों किया ? मेजर-जनरल शाहनवाज खाँ के शब्दों में "कारण तो सीधा-साधा था, लेकिन अंग्रेजों की समझ में नहीं आ सकता था कि हिन्दुस्तान के सच्चे सपूत रणक्षेत्र में मारे जा सकते हैं, हराये नहीं जा सकते। बागड़ी जानते थे कि शत्रु के टैंक पर हमला करके वे मृत्यु से टक्कर ले रहे हैं, लेकिन उन्हें इसका भय नहीं था। वे हार स्वीकार नहीं कर सकते थे।"

ज्ञानसिंह बिष्ट

"से० ले० ज्ञानसिंह अपने सैनिक साथियों से कहा करते थे कि वे उनके साथ ही मरेंगे। उन्होंने अपना वचन पूर्ण रूप से निभाया और यह सिद्ध कर दिया कि वे जीवन और मृत्यु में उनके सच्चे साथी हैं।"

आजाद हिन्द फौज में वीरतापूर्वक शहीद होने वाले ज्ञानसिंह बिष्ट का जन्म १९१४ ई० में बंड पट्टी के खँदुड़ी नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम दयालसिंह बिष्ट था। ज्ञानसिंह सन् १९३२ ई० में सेना में भर्ती हुए और २।१८ वीं रायल गढ़वाल राइफिल्स में हवलदार के पद पर पहुँच गये। मलाया में आजाद हिन्द फौज की स्थापना के समय उन्हें सैकिण्ड लैफ्टीनेण्ट का पद मिला और नेहरू ब्रिगेड की 'बी' कम्पनी का कमांडर नियुक्त किया गया। नेहरू ब्रिगेड को इरावदी नामक स्थान पर शत्रु सेना का सामना करने का आदेश मिला। इस क्षेत्र के 'टौंगजिन' नामक स्थान पर १७ मार्च १९४५ के दिन ज्ञानसिंह को अपने अठ्ठानवे सैनिकों सहित शक्तिशाली ब्रिटिश सेना से लड़ना पड़ा, जिसमें उन्हें वीरगति प्राप्त हुई। मेजर जनरल शाहनबाज खाँ के अनुसार चौकी और बटालियन हेडक्वार्टर के बीच कोई संचार सम्बन्ध न होने पर ज्ञानसिंह ने यह अनुभव किया कि अपनी राइफिलों से हम शत्रु की बड़ी मशीनगनों, हथगोलों और हल्की स्वचालित तोपों का प्रतिरोध नहीं कर सकते और यदि हम अपनी खाइयों में ही रुके रहते हैं, तो हम सब की मृत्यु अथवा कैद निश्चित है। तब हम शत्रु को कोई हानि नहीं पहुँचा सकेंगे। अतः ज्ञानसिंह ने अपनी सेना को शत्रु सेना पर आक्रमण करने का आदेश दिया। 'नेताजी की जय' तथा 'आजाद हिन्दुस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए सैनिकों ने शत्रु सेना पर आक्रमण कर दिया, जिसके साथ 'फौलाद के दानव' चल रहे थे। आजाद हिन्द फौज के सैनिक निश्चित रूप से मृत्यु की ओर बढ़ रहे थे, लेकिन उन्हें इसका कोई भय न था। दृढ़ संकल्प ही उनका सहारा था, जो शत्रुओं के उत्कृष्ट शस्त्रों के मुकाबले लड़ने में इन वीरों को प्रोत्साहन दे रहा था। हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के नाम पर उन्होंने शत्रु के मोटर-ठेलों पर हमला बोल दिया। दो घंटे जमकर संघर्ष हुआ। चालीस आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को वीरगति प्राप्त हुई। शत्रु को इससे

कहीं अधिक हानि हुई और उन्हें पीछे भी हटना पड़ा। इसी समय ज्ञानसिंह ने तीसरी प्लाटून को आगे बढ़ाया। वे उसे आदेश दे ही रहे थे कि उनके सिर में गोली लगी और वे सदा के लिए धरती माता की गोद में सो गये। से० ले० ज्ञान सिंह अपने सैनिक साथियों से कहा करते थे कि वे उनके साथ ही मरेंगे। उन्होंने अपना वचन पूर्ण रूप से निभाया और यह सिद्ध कर दिया कि वे जीवन और मृत्यु दोनों में उनके सच्चे साथी हैं। इसीलिए उनके ब्रिगेड कमांडर ले० कर्नल जी० एस० ढिल्लन ने अपनी ६ अप्रैल, सन् १९४५ की रिपोर्ट में 'चार्ज ऑफ दि इम्मौर्टल्स' (अमरों का आक्रमण) शीर्षक के अन्तर्गत उनके वीरतापूर्ण कार्य का विवरण प्रधान सैनिक कार्यालय को भेजा था। उनका वह पत्र लाल किले के ऐतिहासिक मुकदमे में उनके विरुद्ध सरकारी पक्ष की ओर से पेश किया गया था और वह उस मुकदमे के इतिहास के साथ संलग्न है।

सहायक ग्रन्थ-सूची

अयोध्यासिंह — भारत का मुक्ति संग्राम

ओंकार शरद — भारतरत्न

राजस्थानी समाज प्रकाशन— क्रान्तिकारी प्रेरणा के स्रोत

चौहान, जगतसिंह — स्वाधीनता-संग्राम : पिथौरागढ़ का योगदान

जोशी, श्रीमती सुधा — कूर्मांचिल-केसरी

डबराल, डॉ० शिवप्रसाद — उत्तराखण्ड का इतिहास, खण्ड—६

तारादत्त — भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का इतिहास, खण्ड—२

तिवारी, बसन्त कुमार (एडीटेड बाई) — गोविन्दबल्लभ पन्त

नरवुण्डिया, मथुरादत्त — सल्ट-बारडोली

नयाल, इन्द्रसिंह — स्वतन्त्रता-संग्राम में कुमाऊँ का योगदान

श्री नरदेव शास्त्री — देहरादून और गढ़वाल के राजनैतिक आन्दोलनों का इतिहास (सन् १९१८—३१)

पाण्डे, बद्रीदत्त — कुमाऊँ का इतिहास

बहुगुणा, सुन्दरलाल — उत्तराखण्ड प्रदेश और प्रश्न

बहुगुणा, सुन्दरलाल — उत्तराखण्ड में एक सौ बीस दिन

भक्त दर्शन — सुमन-स्मृति-ग्रन्थ

भक्तदर्शन — गढ़वाल की दिवंगत विभूतियाँ

मजुमदार, आर० सी० (जनरल एडीटर) — दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल्स, खण्ड—११

मिश्र, कन्हैयालाल — उत्तर प्रदेश स्वाधीनता-संग्राम की एक झाँकी

राजकुमार — राजनीतिक भारत (१७५७—१९५६ ई०)

रामनाथ — उत्तर प्रदेश में गान्धी जी

रामनाथ (सम्पादक) — उत्तर प्रदेश में गान्धी जी

ललन व्यास — भारत के महान् क्रान्तिकारी

श्यामसुन्दर एण्ड
सावित्री श्याम — पौलिटिकल लाइफ ऑफ पण्डित गोविन्दबल्लभ पन्त, खण्ड–१ तथा २
शाहनवाज खाँ — नेताजी और आजाद हिन्द फौज
शाहनवाज खाँ — माई मेमोरीज ऑफ आई० एन० ए० एण्ड इट्स नेताजी
शाह, शम्भूप्रसाद — गोविन्दबल्लभ पन्त : एक जीवनी
सत्यदेव विद्यालंकार — गढ़वाल के वीर मैकस्विनी शहीद श्री देवसुमन
स्वतन्त्रता-संग्राम के सैनिक
कुमाऊँ डिवीजन — सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ
स्वतन्त्रता-संग्राम के सैनिक
गढ़वाल डिवीजन — सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ
स्वतन्त्रता-संग्राम — ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी
सांकृत्यायन राहुल — कुमाऊँ
सांकृत्यायन राहुल — वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली

पत्र-पत्रिकाएँ

अमर उजाला
(दीपावली विशेषांक) — १९७४
अल्मोड़ा अखबार
(साप्ताहिक) — १९१४–१९१८ ई०
अल्मोड़ा स्मारिका — १९७३, १९७६ ई०
उत्तर प्रदेश पत्रिका
(स्वतन्त्रता विशेषांक)— १९७२, १९७४
उत्तर के शिखरों में
चेतना के अंकुर — दिल्ली–१९७६
उत्तराखण्ड भारती — नैनीताल, अप्रैल-सितम्बर १९७४
उत्तरायण साप्ताहिक — हल्द्वानी–१७ अगस्त, १९७४
कर्मभूमि साप्ताहिक — कोटद्वार–१९३९–१९७६
कर्मभूमि विशेषांक — कोटद्वार–२६ जनवरी, १९५६
कुमाऊँ-कुमुद — अल्मोड़ा–२३ जून, १९४०
गढ़वाली साप्ताहिक — देहरादून—१९३०

दिशा-भारती साप्ताहिक — दिल्ली—१३ अगस्त, १९७२
देवभूमि साप्ताहिक — नन्दप्रयाग—१५ नवम्बर, १९५३
नव जीवन — लखनऊ—२ अक्टूबर, १९७५
यंग इण्डिया — अहमदाबाद—११ जून, १९२९
समता साप्ताहिक — अल्मोड़ा–९ अक्टूबर, १९४०
सत्यपथ साप्ताहिक — कोटद्वार—१९६९–१९७५ ई०
सरस्वती — इलाहाबाद—दिसम्बर, १९७०
स्वाधीन प्रजा — अल्मोड़ा—१९३०–१९३२ ई०
शक्ति साप्ताहिक — अल्मोड़ा—१९१८–१९७६ ई०
हिमकिरीट — बम्बई—१९७४